श्री महोदय सागर जैन श्वेताम्बर

पाठशाला-मालवा-प्रांत।

श्री० जै० श्वे० स० की पेढ़ी इन्दौर की ओर से संचालित इस संस्था ने श्री पू० मुनिराज श्री १०८ श्री धर्मसागरजी महाराजी सा० के सदुपदेश एवं शुभ प्रयत्नों से ही जन्म पाया।

इस समय इन्दौर, उज्जैन, बदनावर, रतलाम, मंदसौर, भवानीमंडी और रामपुरा आदि मुख्य शहरों के आस पास के गांवों में करीब १२५ पाठशालाएं सुचारु रूप से चल रही हैं। अनेक पाठशालाओं का खर्च संस्था बरदाश्त करती है। एवं कुछ पाठशालाएं गांव के खर्च से भी चलती हैं। पाठशाला का काम पूर्ण व्यवस्थित है। पाठशालाओं की देखरेख के लिये तीन अनुभवी योग्य परीक्षक भी संस्था की ओर से नियत किये गये हैं।

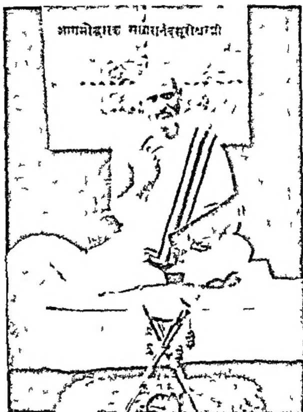
आज तक यह संस्था निस्वार्थ भाव से ज्ञान प्रचार एवं समाज जागृति के कार्य करती आरही है। समाज के शिक्षा प्रेमी सज्जनों से नम्र निवेदन है कि इस संस्था में पूरी २ मदद करें।

मैनेजर

जै० श्वे० स० की पेढ़ी इन्दौर

પ્રાતઃસ્મરણીય

બહુશ્રુત પરમપૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ



શ્રી શ્રી શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી સાગરાનંદ સૂરીશ્વરજી
મહારાજ

श्री हिन्दी जैन धार्मिक वांचनमाला

बाल प्रवेशिका

(दूसरा भाग)



लेखक -
प्रभुदास बेचरदास पारेख
मैनेजर-श्री जैन श्रेयस्कर मंडल, म्हेसाणा



प्रकाशक -
श्री जैन श्वेतांबर संघ की पेढी
इन्दौर (मालवा)



मुद्रक -
राजमल लोढ़ा जैन,
भारत प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर ।



वीर संवत्	प्रथमावृत्ति	विक्रम संवत्
२४६७	प्रति २०००	१९९७
	मूल्य ०-१-०	सन् १९४१

प्रकाशक—
श्री जैन श्वेताम्बर संघ की पेढ़ी,
पिपली बाजार, इन्दौर (सी० आई०)



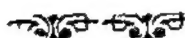
मुद्रक—
राजमल लोढ़ा
भारत प्रिंटिंग प्रेस,
अजमेर

શ્રી તીર્થ રચના ઉદ્યાપના મહોત્સવાદિ :
નિમિત્તે સમુદાર ચિત્તથી ધન વ્યય કરી
શ્રી વીતરાગ ધર્મોદ્યોતકર-



શે૦ મોહનલાલ છોટાલાલ
ઝાંપડાની પોળ અમદાવાદ

भूमिका



अपने छोटे २ साधर्मी जैन बधुओं के हृदय की शुद्धि के लिये, और स्वच्छ भूमि में, श्री वीत-राग परमात्मा प्रणित जगत का सर्व श्रेष्ट महान् धर्म, जैन धम रूप कल्पवृक्ष का बीज मेरे द्वारा बनाई हुई बाल प्रवेशिका म बोया गया होगा तो अवश्य पहिलो पुस्तक उनको लाभप्रद होगी, इसी प्रकार यह दूसरी पुस्तक भी उनकी बुद्धी के विकास में विशेष सहायक रूप बनेगी।

जिस तरह उतम भूमि में बोया हुआ बीज अच्छी तरह अंकुरित होकर फल देने वाला होता है उसी प्रकार उतम भारत भूमि, आर्यक्षेत्र, आर्य प्रजाजन, उतम कुल मे जन्म, उतम सुसंस्कारी कुटुम्ब का सुसंग साथ ही चारों तरफ देव गुरु धर्म की आराधना और उतम सामग्री के द्वारा पोषित की हुई मानव भूमि में समझ पूर्वक धर्म के बाह्य और अभ्यतर स्वरुप का अनुभव ज्ञान रुप उतम बीज बोने से जैन धर्म रुप कल्पवृक्ष क्रमश अंकुरित होकर विकसित होता है और वह

मानव जीवन को इह लोक और परलोक दोनों का हित करन वाला बनता है और अंत में मोक्ष सुख भी प्राप्त करा देता है।

इस धार्मिक वाचनमाला का यह दूसरा पुष्प है, इसकी रचना अनेक रीति से विभक्त और मानसिक एकाग्रता से की गई है, इससे अनेक जगह त्रुटिया रहने की पूरी २ संभावना है तथापि जहा तक बन सका वहा तक संगत रचना करने का प्रयास किया गया है। इस तरह की पाठ्य पुस्तक में किस २ प्रकार का प्रयास करना चाहिये वह मुझे मालूम है फिर भी मेरी बुद्धि से जो कुछ प्रयास हुआ है उनको सज्जन गण संतोष मान कर इस कृति को अपनायगे और पुनरावृत्ति में जो २ त्रुटिया रह गई हैं उनको निकाल देने का प्रयत्न किया जायगा।

मेरी भाषा हिंदी नहीं है इससे विशेष त्रुटियां रह गई हैं फिर भी मुझे आशा है कि यह पुस्तक जैन विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी बनेगी व उनके चित में विशेष प्रकाश डालेगी तो मेरा, प्रकाशक का व उपदेश का प्रयत्न सफल समझेंगे।

बच्चों को अपने धर्म की सामग्री देखने से अनेक तरह का ज्ञान हो इसी लिए प्रभुजी का वर घोडा, उजमणा, महोत्सव, तीर्थयात्रा, तीर्थभूमि वगैरह की जाहेर रचना, आदि विविध योजनाए श्री पूर्वाचार्य भगवतोने फरमाई हैं। उसमें सब लोग बच्चों से लेकर बुढों तक आनद के साथ अनेक तरह का धार्मिक ज्ञान प्राप्त करलेते हैं, इसी तरह का बडा भारी उद्यापन—महोत्सव जैनपुरी अहमदाबाद याने राजनगर मे शेठ मोहनलाल छोटालाल भाइ की तर्फ से अपूर्व रचनाओं के साथ बडे समारभ से करने मे आया था रचनाओं की सुन्दरता और भव्यता देखकर कई भव्यात्माए धर्म के प्रभाव को तरफ आकर्षित होतो हुई देखी जाती थी। ऐसी आकर्षक रचनाओं के साथ ही बच्चों के दिल में वीतराग धर्म का ज्ञानांकुर बचपन से ही विकसित हो इसीलिये उक्त शेठ श्री की ही उदारता से यह किताब अपने बाल साधर्मिक बन्धुओं के हाथ में पहुँचाने का प्रबन्ध इंदौर जैन—

श्वे० पेढी से किया गया है। हम आशा रखते हैं कि इस किताब से हमारे बाल साधार्मिक भाइयों के हृदय में वंश परंपरा से प्राप्त हुआ परम पवित्र जैन धर्म का मर्म अवश्य सक्रिय चिर स्थायी होगा और श्रद्धा दृढ होने से सम्यक्त्व गुण में भी वृद्धी होगी।

इत्यलम्-सुज्ञेषु किं बहुना ?

म्हेसाणा श्रीमद् यशोविजयजी जैन संस्कृत-पाठशाला।	ली बन्धु — प्रभुदास बेचरदास पारेख



दो शब्द



'श्री जैन धार्मिक हिन्दी वाचनमाला' के प्राथमिक विभाग में बाल प्रवेशिका और पहिली पुस्तक (प्रथम की बाल प्रवेशिका) के साथ यह दूसरी पुस्तक विद्यार्थियों के हाथों में पहुँचाने का सुअवसर पाकर हमें अत्यन्त हर्ष होता है।

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव विश्वविश्रुत श्रीमद् सागरानन्द सूरीश्वरजी महाराज के विद्वान् शिष्य पन्यासजी महाराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज के शिष्य प्रधानतया मालव देशोपदेशक पूज्यपाद परम तपस्वी मुनि श्री धर्मसागरजी महाराज ने मालवा के विहार दरमियान अनेक जैन धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु करवाने का उपदेश देकर परम उपकार किया है।

इस किताब में विश्वविश्रुत जैन सिद्धान्त के प्रखर वक्ता परमपूज्य आचार्य महाराज श्री. श्री श्री. १००८ श्री सागरानन्द सूरीश्वरजी महाराज के दर्शन के लिये फोटू दिये गये हैं और हमारे इस कार्य को सम्पूर्ण द्रव्य की सहायता देने वाले अपूर्व उद्यापन महोत्सव कर

के लक्ष्मी की सार्थकता करने वाले दानवीर शेठ मोहन लाल छोटालाल और उनकी धर्मपत्नी माणेकबाई के फोटु भी इस छोटी पुस्तक में दिये गये हैं। उक्त सेठ सा. ने द्रव्य की सम्पूर्ण सहायता देकर हमारे इस प्रकाशनको सरल बना दिया है।

तथापि इस पुस्तक की कीमत रखने का कारण यह है कि-शक्ति शाली पाठशालायें और सद्गृहस्थ कीमत देकर पुस्तक खरीद लें और विक्रय से उत्पन्न होने वाली रकम उपयोगी दुसरी हिंदी पुस्तक छपाने के काम में ली जायें कई एक पाठशालायें खरीद में अशक्त हैं, उन सभी को भेंट दी जायगी।

प्रभुदासभाई बेचरदास पारेख और माल्वा प्रांत की पाठशालाओं के कार्य में योग्य सुचना, सलाह, मदद देने वाला श्री म्हेसाणा, यशोविजयजी जैन संस्कृत पाठशाला और उनके कार्यवाहकों का भी इसीस्थ ऊपर आभार मानते हैं।

कार्यवाहक
श्री जैन श्वे संघकी पेढी
इंदोर

लि श्री संघ सेवक—
शा रतिलाल जीवणलाल

अनुक्रमणिका



पाठ	विषय	पृष्ठ
१	पर्वाधिराज पर्युषणापर्व	३
२	मदिर प्रवेश	४
३	विविध द्रव्यों से पूजा	६
४	चैत्य वदन विधी	८
५	चैत्य वदन भाग १ ला	९
६	,, ,, २ रा	११
७	,, ,, ३ रा	१३
८	नमुत्थुणं शक्रस्तव सूत्र	१६
९	साथ में सर्व चैत्यों और मुनियों को वदना	१८
१०	पच परमेष्टी नमस्कार और स्तवन	१९
११	श्री पार्श्व जिन महिमा उवसग्गहर स्तोत्र	२२
१२	प्रणिधान पूर्वक प्रार्थना सूत्र	२५
१३	अरिहत चेइआण सूत्र	२६
१४	अन्नत्थ ऊससिएणं सूत्र	२७
१५	चैत्यवदन के सूत्रों का रहस्य	३०
१६	जगचिंतामणि की कथा	३६
१७	नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्रार्थ	३८

२ सम्यग् ज्ञान विभाग

३ सम्यग् चारित्र विभाग

४ मार्गानुसारि विभाग



જેમના-નવપદ આરાધના જ્ઞાનપંચમી તપ -વિગેરેના
ઉદ્યાપના નિમિત્તે મહોત્સવ કરવામાં આવ્યો હતો,



તે-શેઠ મોહનલાલ છોટાલાલના ધર્મપત્ની-
બાઈ માણેકબાઈ

जैन धार्मिक हिन्दी वाचनमाला

प्रथम पुस्तक

सम्यग् दर्शन विभाग

ॐ अर्हम् ।

पाठ १ ला

पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्व

(राग—धन्या श्री)

पर्व पजुषण आया ।
अहो ! भाई !
पर्व पजुषण आया—टेक
पुण्य का पोषण पाप का शोषण ।
धर्म स्वराज्य छवाया ।
अहो ! भाई ! ॥ १ ॥
सर्व पर्वों का राजाधिराजा ।
सब से अधिक सोहाया ।
अहो ! भाई ! ॥ २ ॥
गाओ, बजाओ, खूब आनन्दो ।
आत्म की ज्योत जगाया ।
अहो ! भाई ! ॥ ३ ॥

[सब विद्यार्थी शिक्षक के साथ गाते हैं और ताल के साथ आनंद से नाचते कूदते हैं]

पाठ २ रा

मन्दिर प्रवेश

पिताजी—मनोहर ! ओ मनोहर ! मैंने प्रतिक्रमण कर लिया है अब तुम मेरे साथ प्रति मन्दिरजी मे चलने के लिये तैय्यार हो जाओ।
देखो तुम्हारी माँ और बहिन मालती भी नये कपडे पहिन कर मन्दिर जा रही है।

मनोहर—हाँ पिताजी ! मे अभी तैय्यार होकर आता हूँ

पिताजी—आज अट्टाई घर है, जल्दी करो।

मनोहर—मेरी माँ ने मुझको नये नये कपड़े निकाल दिये है, मै अभी उनको पहिन लेता हूँ।

[मनोहर स्वच्छ नये कपड़ों को पहिनता है]

पिताजी—अरे मनोहर ! साथ मे चाँवल के झूलने (बटवा) मे बादाम, सुपारी, मेवा

व हरे फल वासत्तेप, और धूप, अगर बत्ती तथा छुट्टे पैसे भी ले लेना।

मनोहर—पिताजी ! ये तो सब चीजें मैंने पहिले से ही तय्यार कर रक्खी है।

[मनोहर अपने पिताजी के साथ में प्रथम "निस्सिही" कहते हुए—ससार के प्रत्येक पाप कार्यों का त्याग कर घर से निकलता है

मन्दिरजी के द्वार पर पहुच कर दूसरी "निस्सिही" कहता है-व मन्दिरजी के बाहर सम्बन्धी सर्व कार्यों को छोड़ता है। आगे जाकर प्रभु—प्रतिमाजी देखते ही "नमो जिणाए" "नमो भुवण बधूण" कह कर हाथ जोड मस्तक नमा कर नमस्कार करता है, और फिर भगवान के समीप मूल गभारे के पास पहुच कर—स्तुति करता है —]

प्रभु दर्शन सुख सपदा, प्रभु दरिशन नव निध ।
प्रभु दर्शन से पामिये, सकल पदारथ सिद्ध ॥१॥

भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान ।
भावे भावना भाविये भावे केवल ज्ञान ॥२॥
त्रिभुवन नायक तु धणी महा म्होटो महाराज ।
मोटे पुण्ये पामियो, तुम दरिशण हूं आज ॥३॥
दर्शनं देव देवस्य दर्शनं पाप नाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं दर्शनं मोक्ष-साधनम् ॥४॥
अद्य मे सफलं जन्म, अद्य मे सफला क्रिया ।
अद्य मे सफलं गात्रं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥

पाठ ३ रा

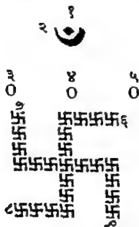
विविध द्रव्यों से पूजा

[स्तुति कर चुकने पर—मनोहर अपने पिताजी के साथ में मुख्य मन्दिरजी को ३ प्रदक्षिणा देता है—और फिर दोनों—अक्षत [अखंड चाँवलों] से स्वस्तिक तिन तत्त्व सिद्धसिला और सिद्ध भगवतो के स्थान का आलेखन करता है]

स्वस्तिक करते हुए

चार गतिने चूरवा स्वस्तिक करूं मनोहार ।
ऊपर तीन ढगली करूं, रत्नत्रयी ने धार ॥

अर्द्ध चंद्र ऊपर करी, अक्षत थी सुख कार ।
'अक्षत पद' को मांगु मैं दादा के दरबार ॥
अक्षत पूजा करतां थका, सफल करूं अवतार
फल मागू प्रभु आगले, तार तार मुझ तार ॥
सासारिक फल मांगता, भटक्यो बहु ससार ।
अष्ट कर्म निवारवा, मागु मोक्ष फल सार ॥
चिहु गति भ्रमण ससार मा, जन्म-मरण जजाल ।
पचम गति विण जीवने, सुख नहीं तीनु काल ॥
दर्शन ज्ञान चारित्र का, करु आराधन नित्य ।
सिद्ध शिला को ऊपरे, हो मुझ आतम 'सिद्ध' ॥



१ सिद्ध स्थान (मोक्ष)
२ सिद्ध शिला
३ दर्शन
४ ज्ञान
५ चारित्र
६ मनुष्य
७ देव
८ तिर्यंच
९ नरक

[इस प्रकार विविध द्रव्यों से स्तुति करने के बाद तीसरी 'निस्सिही' कह कर—द्रव्य पूजा का त्याग कर, भाव-पूजा [चैत्य-वन्दन] में प्रवेश करता है]

पाठ ४ था

चैत्य वन्दन विधि

पिता—मनोहर ! देख प्रथम तीर्थंकर परमात्मा-को सबसे अधिक आदर और भाव भक्ति से तीन खमासमण सूत्रसे पचांग प्रणाम करो।

मनोहर-(खड़ा हो हाथ जोड़कर बोलता है)

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसिहिआए मत्थएण वंदामि।

[यह सूत्र मनहर तीन बार बोलता है। पिता और पुत्र दोनों उत्तरासण (दुपट्टा) से तीन दफे यतना पूर्वक भूमिका प्रमार्जन करते हैं फिर तीन दफे पञ्चाङ्ग प्रणिपात वंदन करता है]

पिता—दोनों हाथों की अंगुलियां परस्पर एक दूसरे में मिलाकर, कमल के डोडे के आकार से दोनों हाथ को बनाकर मुंह के सामने इस

मनोहर—इस तरह से ?

पिता—हां ! अब दोनों हाथों की कोहनियाँ को पेट के ऊपर रक्खो, और दोनों घूटनों को जमीन के ऊपर लगाओ, तथा पीछे के पैर के तलों को पीछे खड़े रख कर पग की पिंडलियों के ऊपर (योग मुद्रा से) बैठो।

मनोहर—(उसी तरह से बैठकर) अब सब तरह से ठीक बैठ गया हूं ?

पितजो—बस।

पिता—अब प्रभु के सामने अपनी दृष्टि एकाग्र करो।

पाठ ५ वां

चैत्यवदन भाग १ ला

पिता—मनोहर ! तुम चैत्यवदन करने के लिये आदेश मागो।

मनोहर—इच्छाकारेण संदिसह भगवान् ! चैत्य वदन करू ? इच्छं !

पिताजी ! चैत्यवदन बोलने का आदेश ?

जग वधव जग-सत्थवाह
जग भाव वियक्खण ।
अट्ठावय सठविअ—रूव कम्मट्ठविणासण ।
चउवीसंपि जिण-वर
जयतु अप्पडिहय सासण ॥१॥
कम्म भूमिहिं कम्म भूमिहिं
पढ़म सघयणि
उक्कोसय सत्तरिसय
जिण वराण विहरत लब्भइ
नवकोडिहि केवलिण
कोडि सहस्स नव साहु गम्मइ ।
सपइ जिण वर वीस मुणि
बिहु कोडिहिं वर नाण
समणह कोडि सहस दुअ
थुणिज्जइ निच्च विहाणि ॥२॥
जयउ सामिय ! जयउ सामिय ! रिसह सत्तुंजि
उज्जिंति पहू नेमि जिण

जयउ वीर सच्चउरी मडण
भरुअच्छहिं मुणि सुव्वय
मुहरि पास दुह दुरिअ खडण ।
अवर विदेहिं तित्थयरा
चिहु दिसि विदिसि जिं के वि
तीआणाग संपडय
वंदु जिण सव्वेवि ॥३॥

सत्ताणवइसहस्सा लक्ख छप्पन्न अट्ठकोडीओ ।
बत्तिसय-बासिआइ तिअ-लोए चेइए वंदे ॥४॥

पनरस-कोडि सयाइ कोडि बायाल-लक्ख अडवन्ना ।
छत्तीस सहसअसिआइ सासय बिंबाइ पणमामि५

पाठ ७ वां

पिना चैत्य शब्द का अर्थ—प्रतिमा और मंदिर यह दोनों होता है। तीर्थंङ्कर भगवान् का हम पर इतना बड़ा उपकार है, कि हमें उसे कभी न भूलना चाहिये, और सदैव तन-मन धन से उनकी भक्ति करना चाहिये। तीर्थङ्कर भगवान की प्रतिमाजी भी उनका

एक स्वरूप होने से हम उनकी पूजा भक्ति करते हैं। उनकी भक्ति करने का सब के लिये उत्तम स्थान 'चैत्य' या मंदिर ही है। और उनके चैत्य को वंदन करना ये ही मंदिर और प्रतिमा के द्वारा प्रभु को वंदन कराता है, और इसीलिये यह चैत्य वंदन कहलाता है। समझे ?

मनोहर—हाँ पिताजी।

पिता—बोलो, आगे बोलो!

मनोहर—जं किंचि सूत्र।

जं किंचि नाम तित्थं
सग्गे पायालि माणुसे लोए।
जाइं जिण बिंबाइं
ताइं सव्वाइं वंदामि ॥१॥

पिता चैत्य वंदन सूत्र में तो प्राय किसी एक या अधिक तीर्थंकर की या तीर्थ की स्तुति होती है। परन्तु इस सूत्र में तो संसार भर के तीनों लोक के सब तीर्थ और सब प्रतिमाजी को व चैत्यों को वंदन हो जाता है। इसलिये ये सूत्र भी चैत्य वंदना का मुख्य अंग है।

पाठ ८ वां

नमुत्थुरा-शक्रस्तव—सूत्र

नमुत्थुण—
अरिहताण,
भगवताण ।
आइ - गराण
तित्थ-यराण
सय-सबुद्धाण ।
पुरिसुत्तमाण,
पुरिस-सीहाण,
पुरिस-वर पुडरिआण,
पुरिस-वर गध हत्थीण ।
लोगुत्तमाण,
लोग-नाहाण ।
लोग हिआण,
लोग-पईवाण,
लोग-पज्जोअ-गराण, ।

मनोहर—स्तवन का आदेश ?
पिता—हा, बोलो।
मनोहर—[स्तवन बोलता है]—

स्तवन

जग-जीवन ! जग वालहा—
मरु देवानो नन्द ! लाल रे।
मुख दीठे सुख ऊपजे
दरिशण अति हि आणद लाल रे ॥जग०१॥
आखडी अम्बुज पाखडी
अष्टमी शशि सम भाल लाल रे ।
वदन ते शारद चन्दलो
वाणी अति हो रसाल लाल रे ॥जग॥०२॥
लक्षण अगे विराजता
अडहिय सहस उदार लाल रे ।
रेखा कर चरणादिके
अभ्यतर नहीं पार लाल रे ॥ जग०॥३॥

इद्र चन्द्र रवि गिरि तणा
गुण लेइ घडियु अग लाल रे।
भाग्य किहा थकी आवियु ?
अचरिज अेह उत्तुङ्ग लाल रे ॥जग०॥४॥
गुण सघलां अगो कर्या
दूर कर्या सवि दोष लाल रे ।
वाचक यश् विजये थुणयो
देजो सुखनो पोष लाल रे ॥जग० ॥५॥

पिता-'नमोऽर्हत्'-से अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधुजी, उन पाँचो परमेष्ठी को नमस्कार किया जाता है, अर्थात् यह नमस्कार मत्र का सक्षेप है। और यह यहाँ पर एक तरह का सक्षिप्त स्तवन भी है।

स्तवन, स्तुति—इत्यादि स्वतन्त्रता से बोलने के पहिले प्रमाण भूत बनाने के लिये 'नमोऽर्हत्' बोलाता है।

स्तवन - भगवान की भक्ति में पूर्ण तल्लीन होकर उत्साह पूर्वक मधुर एव रसील राग में—मीठे स्वर में—पूर्वाचार्यों का बनाया हुआ—उत्तम काव्यमय एव—

प्रभु गुण गान सहित—ऐसा ५, या अधिक गाथा का स्तवन बोलना चाहिये। स्तवन नहीं याद हो तो उवसग्ग हर स्तोत्रनामक श्रीपार्श्वनाथभगवान का स्तवन बोलना चाहिए। स्तवन पूर्वाचार्यों का बनाया हुआ न याद हो, तो स्तवन के बारे में उवसग्गहरस्तवन बोलना चाहिये।

इस पाठ का स्तवन में आदीश्वर प्रभु के शरीर आदि का अद्भुत गुणों का वर्णन किया है।

पाठ ११ वां

श्री पार्श्वजिन महिमा उवसग्गहर स्तवन

उवसग्ग-हर पास
पास वदामि कम्म-घण-मुक्क।
विस हर-विस निन्नास
मगल कल्लाण आवास ॥ १ ॥
विस-हर फुलिग मत
कठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्स गह रोग मारी

दुट्ठ-जरा जंति उवसाम ॥ २ ॥
चिट्ठउ दूरे मंतो
तुज्झ पणामो वि बहु-फलो होइ ।
नर-तिरिएसु वि जीवा
पावंति न दुक्ख दोगच्च ॥ ३ ॥
तुह सम्मत्ते लद्धे
चिंता मणि कप्प पायव-ऽब्भहिये ।
पावंति अविग्घेण
जीवा अयरामर ठाणं ॥ ४ ॥
इअ संथुओ महा-यस !
भत्ति भर निब्भरेण हिअएण ।
ता देव ! दिज्ज बोहि
भवे भवे पास ! जिण चंद ! ॥ ५ ॥

पिता—इस स्तवन में पार्श्वनाथ भगवान् की स्तुति की गई है। और प्रभु का नाम स्मरण करने का महान् फल और प्रभाव बतलाया गया है। इस सूत्र से विघ्न का नाश होता है, और यह सूत्र मांगलिक भी है।

पाठ १२ वां

मन वचन काया । की अेकाग्रता कर
[प्रणिधान पूर्वक] प्रार्थना सूत्रम्-

जय वीय राय ! जग गुरू !
होउ मम तुह पभावओ भयव ।
भव निव्वेओ मग्गा-
णुसारिया इट्ठ फल सिद्धी ॥ १ ॥
लोग विरुद्ध च्चाओ
गुरु-जण-पूआ परत्थकरण च ।
सुह-गुरु जोगो तव्वयण
सेवणा आ-भवमखंडा ॥ २ ॥
वारिज्जइ जइवि नियाण
बधण वीय-राय ! तुह समए ।
- तहवि मम हुज्ज सेवा
भवे भवे तुम्ह चलणाण ॥ ३ ॥

दुक्खक्खओ कम्म-क्खओ
समाहि-मरणं च बोहि लाभो अ ।
संपज्जउ मह एअं
तुह नाह ! पणाम-करणेणं ॥ ४ ॥
सर्व मङ्गल माङ्गल्यं
सर्व-कल्याण कारणम् ।
प्रधानं सर्व धर्माणां
जैनं जयति शासनम् ॥५॥

विधि-इस सूत्र को भी 'जं जावन्ति' की तरह मुक्ता शुक्ति मुद्रा से दोनों हाथ जोड ललाट तक ऊँचे करके बोलना चाहिये, 'आ भवमखंडा' के बाद में हाथ कुछ नीचे कर लेना चाहिये। इतनी मुख्य प्रार्थना है।

यह प्रार्थना सूत्र है। इसमें जिनेश्वर भगवंत के आगे जैन धर्म के योग्य बनकर आत्मोन्नति की विविध प्रार्थना की गई है, और जगत में परम मंगल रूप और उत्तम कल्याणमय जैन धर्म तथा जैन शासन की सदा विजय होने की इच्छा की गई है।

पाठ १३ वां

अरिहत चेइआण सूत्र

मनोहर-[खड़ाहोकर]-

अरिहन्त चेइयाण-

—करेमि काउस्सग्ग।

वदण-वत्तियाए पूअण-वत्तियाए—

सक्कार-वत्तियाए

सम्माण-वत्तियाए—

बोहि-लाभ-वत्तियाए

निरुवसग्ग-वत्तयाए—

सद्धाए-मेहाए-धईए—

धारणाए-अणुप्पेहाए—

' वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्ग अन्नत्थ० ।

पिता-इस सूत्र में-अरिहत भगवान् की प्रतिमाजी को वदन सत्कार विगेरे करने के लिये कायोत्सर्ग करने का

सकल्प किया जाता है। कायोत्सर्ग से भी वदन-पूजन का फल हो सकता है।

पाठ १४ वां

अन्नत्थ—ऊससिएणं–सूत्र

अन्नत्थ–

ऊससिएणं, नीससिएणं—

खासिएणं–छीएणं जंभाइएणं

उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं भमलिए

पित्त-मुच्छाए

सुहुमेहिं अंग सचालेहिं

सुहुमेहिं खेल–सचालेहिं

सुहुमेहिं दिट्ठि सचालेहिं

एवमाइएहिं आगारेहिं–

अभग्गो

अविराहिओ

हुज्ज मे काउस्सग्गो

जाव अरिहंताणं भगवंताणं

नमुक्कारेणं न पारेमि,

ताव—

काय—

—ठाणेणं,

—मोणेणं,

—झाणेणं

अप्पाणं वोसिरामि ।

पिता—इस सूत्र से कायोत्सर्ग में शारीरिक कमजोरी के कारण जो जो शरीर को अस्थिरता होती है। उसके लिये आगार [छूट] रखे गये हैं। जिसे कायोत्सर्ग का भंग न हो।

जहाँ तक नवकार मंत्र का ध्यान गीनकर प्रकट 'नमो अरिहंताणं' बोल कर कायोत्सर्ग सम्पूर्ण न

करे, वहाँ तक शान्ति और मौन पूर्वक खडे रहकर मन,वचन, काया की स्थिरता से—दृष्टि नासिका के अग्र भाग ऊपर स्थापित करके 'एक नवकार' गिनना चाहिये। "नमो अरिहंताणं" कहकर-काउस्सग्गम पार के 'नमोऽर्हत्' कहकर स्तुति बोलना चाहिये।

इस सूत्र से काया का [मन' वचन काया की प्रवृत्ति का] -[त्याग गुप्ति उत्सर्ग] होता है। इसमें दोनों हाथ बिल्कुल नीचे लटका देना चाहिए। पैरों के पंजे पीछे के हिस्से में चार अगुल से कमी, और आगे के भाग में चार अगुल का एक दूसरे से अंतर होना चाहिये।

मुँह प्रभु प्रतिमाजी के ठीक सन्मुख होना चाहिये। आखों की दृष्टि नाक के अगले भाग पर रखना चाहिये। दोनों को पर दृष्ट बन्ध नहीं करते हुए होठ बिना फड फडाये एक नवकार गिनना चाहिये। विशेष ऊँचा-नीचा स्वांस भी न लेना चाहिये। मच्छर, डास, वगैरा काटे तो भी शरीर को नहीं हिलना-झुलना चाहिये। नवकार पूरा गिन लेने पर नमो अरिहंताणं कह कर नमोऽर्हत्० के बाद स्तुति कहना चाहिये।

मनोहर—आदेश स्तुति का।

पिताजी—हा। बोलना।

मनोहर—तहत्ति।

पाठ १६ वां

जग चिंतामणि की कथा

एक दिन भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी महाराज द्वारा प्रति बोध पामे हुए शाल महा शाल वीर प्रभु के पास आते समय, भावना भाते हुए केवल ज्ञान को प्राप्त हुए। और केवलियों की परिषद् (सभा) में बैठने लगे। तब गौतम स्वामीजी अपने साधुओं को 'केवली-परिषद' में बैठते हुए देख रोकने लगे। इस पर भगवान् कहने लगे "हे गौतम! केवलियों की आशातना मत कर!"-गौतम स्वामी आश्चर्य-चकित हो कहने लगे—"क्या उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है?"—प्रभु बोले "हाँ, इनको केवल ज्ञान हुआ है"

गौतम स्वामी पूछने लगे—"तो प्रभु! मुझे केवल ज्ञान प्राप्त होगा या नहीं?"

तब प्रभु ने कहा—"अष्टापद पर्वत पर-भरत महाराजा के द्वारा भराये हुए २४ तीर्थंकरों की स्वलब्धि से यात्रा करे। वह उसी भव में मोक्ष जाता है—तुम अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने से इसी भवमें मोक्ष—गामी होंओगे।

इस पर गौतम स्वामी ने पूछा "प्रभो! भरत महाराज न किस कारण अष्टापद गिरि पर-प्रतिमाओं

की प्रतिष्ठा कराई ? और किस समय ?"

भगवान् बोले-"हे गौतम ! एक दिन भरत महा राज ने आदीश्वर भगवान् को पूछा—"हे प्रभो ! क्या इस चोवीशी का कोई भी तीर्थंकर का जीव यहाँ पर मौजूद है ?"—तब ऋषभदेव स्वामी ने उत्तर दिया "हाँ ! तेरा पुत्र मरिचि इसी चौवीसी का अन्तिम तीर्थंकर होगा" ऐसा सुनकर—भरत महाराजा ने हर्षित होते हुए-भावी तीर्थंकर तरीके—आदर सत्कार के लिये अपने पुत्र मरिचि को शिथिल होते हुए भी-तीन प्रदक्षिणा देकर वदन किया। इसके अलावा अपने पिता से लेकर पुत्र तक प्रत्येक—चौवीशों तीर्थंकरों की, यथावत् वर्ण एव काया प्रमाण आदि के अनुसार सुवर्णादि रत्नमय २४ बिंबो की स्थापना की। अष्टापद पर्वत पर सिंह निषद्या की बैठा हुआ सिंह की-आकृति वाला विशाल मदिर बनवाया और आशातना का निवारण के लिए लोहे का यान्त्रिक पुरुषों रक्खें। वहाँ पर भगवान् श्रीऋषभदेव स्वामी तथा अन्यान्य कई गणधर महात्मादिक मोक्ष में गये हैं।

प्रभु की यह बात सुनकर—गौतम स्वामी ने अष्टापद की यात्रा के लिये प्रयाण किया वहा पर्वत की तलेटी पर मोक्षाभिलाषी १५०० पदरह सौ तापसो को-

स्वलब्धि द्वारा खीर से पारणा कराकर सन्तुष्ट कर अपना शिष्य बनाये। तत्पश्चात् गौतम स्वामी ने अपने ज्ञान-बल से लब्धि द्वारा सूर्य किरणों का अवलम्बन लेकर अल्प समय में ही अष्टापद पर विराजमान चौबीश तीर्थकरों की जात्रा की व थोड़े समय में ही वापिस नीचे आकर १५०० शिष्यों को अपने साथ ले जाने लगे। उस समय मार्ग में आते हुए गौतम गुरु के गुणों की भावना भाते हुए ५०० तपस्वियों को तो मार्ग में ही केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया, ५०० को समवसरणमें तथा ५०० को प्रभु के मुख के दर्शन करते ही पंचम ज्ञान उत्पन्न हो गया।

इस प्रकार अष्टापद की यात्रा समय-गौतम स्वामी ने यह 'जग चिंतामणि' नामक चैत्य वंदन बनाया था। यह इस कथा पर से मालूम होता है।

पाठ १७ वां

नमुत्थुणं [शक्र-स्तव] सूत्रार्थ

इस—सूत्र में तीर्थंकर देव श्री अरिहंत परमात्मा के ३३ असाधारण—महान् जबरदस्त विशेषणों या पद वियों से सहित प्रभु की स्तुति एवं वंदन किया गया है।

१ शत्रुओं का नाश करने वाले पूज्य ऐसे—
२ अरिहंत भगवान् को नमस्कार हो ॥ १ ॥
भगवान् कैसे हैं ? सो बताते हैं —
३ धर्म की आदि करने वाले
४ तीर्थ की स्थापना करने वाले
५ स्वयं बोध पाने वाले ॥२॥
६ पुरुषों में उत्तम,
७ पुरुषों में सिंह समान,
८ पुरुषों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमल समान,
९ पुरुषों मे श्रेष्ठ गन्ध हस्ती समान ॥३॥
१० समस्त संसार में श्रेष्ठ—उत्तम,
११ संसार के नाथ,
१२ सारे संसार का हित करने वाले,
१३ संसार मे दीपक के समान,
१४ तीन लोक में प्रकाश करने वाले ॥४॥
१५ अभय दान देने वाले,
१६ ज्ञान चक्षु देने वाले,

१७ मोक्ष मार्ग देने वाले,
१८ सब को शरण देने वाले,
१९ सम्यक्त्व रत्न को देने वाले ॥५॥
२० धर्म रत्न को देने वाले,
२१ धर्मोपदेश देने वाला,
२२ धर्म के नायक, २३ धर्म के सारथि,
२४ धर्म के चारो दिशाओ के श्रेष्ठ चक्रवर्ती
२५ किसी से खंडित न हो सके, वैसे उत्तम ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले,
२६ घाति कर्मों का नाश कर छद्मस्थपने को दूर करने वाले ॥ ७ ॥
२७ राग द्वेष को स्वय जीतने वाले, औरो से जितवाने वाले,
२८ स्वय तिरने वाले, औरों को तिराने वाले,
२९ स्वय तत्त्व को समझने वाले, औरो को समझाने वाले,
३० कर्म से स्वय मुक्त होने वाले,

दूसरों का कर्म वन्धन छुड़ाने वाले ॥८॥

३१ सर्वज्ञ सब जानने वाले,

३२ सर्वदर्शी—सब देखने वाले,

३३ उपद्रव रहित, निश्चल, निरोग, अनत, अक्षय, बाधा रहित, व फिर जहाँ से आनागमन नहीं है, वैसी "सिद्धि गति" नामक स्थान को पाये हुए,

और सर्व प्रकार के दु खो–भयो को जीतने वाले—

ऐसे श्री अरिहत जिनेन्द्र भगवान को मेरा नमस्कार हो ॥ ६ ॥

भूत काल में जो तिर्थंकर हुवे हों, भविष्य काल में जो तिर्थंकर होने वाले हैं, एव वर्तमान काल मे जो विद्यमान है–उन सब (द्रव्य जिन) अरिहत परमात्माओं को मैं त्रिविध (मन, वचन, काया से) वदना करता हूँ ।

पाठ १८ वां

नमुत्थुणं की कथा.

गुर्जर देशके मनोहर सुरग समान श्री माल नामक एक सुन्दर नगर में शुभकर श्रेष्ठी की लक्ष्मी भार्या से सिद्ध नामक गुणवान् पुत्र का जन्म हुआ। माता पिता ने उस पुत्रको धन्या नामकी एक कुलीन कन्या के साथ परणाया।

एक समय, जुए के व्यसन में मग्न हो जाने से, सिद्ध अर्द्ध रात्रि व्यतीत हो जाने पर घर पर आया, और किवाड़ बजाने लगा। इस पर उसकी माता ने बहुत क्रोध के आवेश में आकर "इतनी रात में जहाँ द्वार खुले हों, वहीं पर चला जा" कह सुनाया।

सिद्ध भी "अच्छा। ऐसा ही करूँगा" कह कर खोजता खोजता एक खुले द्वार वाले उपाश्रय में आया। वहाँ पर उसने कई एक मुनियों को विविध धर्म-क्रियाओं में लगे हुए देखा। यह देखकर उसे अपने किये हुए दुष्कृत्यों पर वैराग्य हो गया, और उसने वहाँ पर रहे हुए उन मुनियों से शरण मांगी।

उस समय गर्गऋषि ने सिद्ध को होनहार भावी प्रभावक समझ कर दीक्षा दी। सिद्ध ने अल्प समय में ही समस्त वर्त्तमान सिद्धान्तों का अभ्यास कर लिया। एक बार उनके गुरु भाई दाक्षिण्यचन्द्र ने उनके रचे हुए शास्त्र में खामी दिखलाई, इससे सिद्धर्षि तर्क शास्त्रों का खूब अध्ययन करने लगे, और बौद्ध धर्म के प्रमाण शास्त्रों को भी सीखने की प्रबल इच्छा हुई। और इस लिये उन्होंने अपने गुरु से बौद्ध देश में जाने की आज्ञा माँगी। गुरु ने कहा कि "वत्स! बौद्ध धर्म के शास्त्र अनेक तर्क जाल से भरे हुए हैं। तुम्हारी बुद्धि स्थिर रहना सम्भव नहीं है। इसलिये तू वहाँ मत जा।" तथापि खूब आग्रह से गुरु ने एक शर्त कर आज्ञा दी, कि "हमको बिना मिले बौद्ध धर्म का स्वीकार करना नहीं।"

गुरु की इच्छा नहीं होते हुए भी वे गये, और बौद्ध-शास्त्र का अभ्यास किया। इससे उनके विचार बौद्ध धर्म में लीन हो गये। और बौद्धमत को ग्रहण करने को तैयार हो गये। लेकिन बौद्ध होने के पहिले अपने गुरु के वचनों में बन्धे होने से वे वापिस अपने गुरु से मिलने को आने लगे। तब बौद्ध गुरु ने कहा कि "हे सिद्ध! तुम भले वहाँ जाओ। परन्तु एक बार हमसे मिले बिना जैन मत होना।" सिद्धर्षि ने इसे स्वीकार कर गुरु के पास आये,

और गुरु ने उन्हें जैन धर्म में स्थिर बनाया, लेकिन फिर बौद्ध गुरु के पास गये। इस तरह २१ बार ये जैन और बौद्ध मत को ग्रहण किया।

आखिर बौद्ध मत को ग्रहण करने का दृढ संकल्प कर फिर भी एक बार अपने पूर्व गुरु के पास आये। इस समय गर्गर्षि ने सुन्दर युक्ति से काम लिया। उन्होंने 'ललित विस्तरा' नामक हरिभद्र सूरि का बनाया हुआ ग्रन्थ सिद्धर्षि के समक्ष रख दिया और आप बाहिर कार्य चिन्ता के लिये गये। उतनी देर में उन्होंने (सिद्ध ने) उस में लिखे हुए चैत्य-वन्दन और नमुत्थुण के युक्ति पूर्ण स्पष्ट अर्थों को पढ़कर-निष्पक्ष पाती जैन धर्म और तीर्थङ्कर भगवान् के अद्भुत गुणों को पहिचान होने से उनके हृदय पर का अज्ञान तिमिर दूर होगया, और जैन धर्म में ही दृढ़ रहने की परम उत्कट सद्भावना जाग्रत हो गई।

गुरु महाराज के आने पर उन्होंने अपने अज्ञान के लिये क्षमा मांगी और हरिभद्र सूरि का अपने ऊपर परम उपकार मानकर अपने का दृढता पूर्वक जैन धर्म में स्थिर किया, और जैन धर्म की प्रभावना की।

पाठ १६ वां

जावंति और जावंत केवि सूत्र के भावार्थ

नमुत्थुण में जिअभयाण तक तीर्थंकर परमात्मा की स्तुति की गई। तथा जे अइया सिद्धा से भूत में होगये उनको, वर्तमान में विद्यमान और भविष्य में होने वाले तीर्थंकर परमात्माओं को वंदन किया।

जावंति सूत्र से

उर्ध्व' अधो और तिरछा' इन तीन लोक में जितने जिन मंदिर हैं उन सबको यहाँ से वंदन करता हूं। और खमासमण सूत्र से पंचांग प्रणाम करते हैं। और साथ में —

जावंत केवि से

भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान मन वचन काया से संयम पालने वाले सब मुनि महाराजाओं को मन वचन काया की एकाग्रता से वंदन करता हूं।

नमोऽर्हत् का अर्थ

अरिहंत प्रभु, सिद्ध भगवंतो, आचार्य भगवंतो, उपाध्यायजी महाराजाओं और सर्व मुनि महाराजाओं को नमस्कार हो।

पाठ २० वां

'नमोऽर्हत्' की कथा

विक्रमादित्य राजा के समय में श्री पादलिप्त सूरि की वंशपरंपरा में स्कन्दिल सूरि नामक एक आचार्य हो गये हैं। सरस्वती की आराधना से उन्हें विजयीवादशक्ति प्राप्त हुई, इसलिये उनका नाम वृद्धवादी प्रसिद्ध हुआ।

देवर्षि और सिद्धसेन नामके दो विद्वान् श्री वृद्धवादी के साथ वाद में हारे, अत सिद्धसेनजी को वृद्धवादी का शिष्य होना पडा। गुरु ने भी आचार्य पदवी दी, और 'कुमुदचन्द्र-सिद्धसेन' नाम से सुशोभित किया। अपनी कवित्व शक्ति से उन्होंने राजा विक्रमादित्य देवपाल आदि को भक्त बनाया, और सुवर्णसिद्ध योग तथा सरसवों द्वारा मन्त्र शक्ति से सुभट उत्पन्न करने की विद्या से राजा की विपत्ति निवारण कर जैनधर्म की प्रभावना की।

एकबार सिद्धसेन दिवाकर को मूल जैन आगम जो कि प्राकृत भाषा में रचे हैं, उन्हें संस्कृ[illegible]
का विचार हुआ, और गुरु आज्ञा [illegible]
को [illegible]
करह बदल दिया।

बात मालूम हुई तब उन्होंने सिद्धसेन आचार्य को बहुत ठपका दिया। और कहा कि—

(१) प्रकृत भाषा—यह प्राकृतिक या कुदरती भाषा है। संस्कृत भाषा विद्वानों के संस्कार करने से हुई है।

(२) प्राकृत भाषा के शब्दों में से अनेक अर्थ निकल सकते हैं।

(३) प्राकृत भाषा बच्चों, स्त्रियों तथा सर्वजन साधारण के लिये बोलने सीखने और समझने में अति उत्तम व सरल है।

(४) प्राकृत भाषा के सूत्रों के अनेक विवेचन अर्थ हो सकते हैं।

(५) प्राकृत भाषा के सूत्रों में एक प्रकार की अद्भुत सहज मधुरता भरी हुई है। और इसीलिये सर्वसामान्य के बोलने, उच्चारण करने तथा गाने में सुगम है।

(६) प्राकृत भाषा के सूत्रों में अनन्त अर्थ उत्तम उपदेश, और परमार्थ भरे हैं

(७) तीर्थंकर परमात्मा और गणधर भगवत संस्कृत के जानकार होते हुए भी उपरोक्त गुण देखकर प्राकृत भाषा में आगम की रचना की। उनका बदलने की जरूरत व अधिकार भी किसी को नहीं है।

इस रहस्य को समझ कर सिद्धसेन आचार्य को अपनी गलती पर बहुत पश्चात्ताप हुआ, और इसके लिये श्री श्रमण संघ से उन्होंने प्रायश्चित्त मांगा। तब गुरु ने उन्हें १२ वर्ष पर्यंत गच्छ छोड़कर साधुवेष गुप्त रखने की आज्ञा दी, और इतनी ही अवधि के अन्दर जैनधर्म की कोई महान् उन्नति-प्रभावना कर फिर संघ में आने को कहा।

तब सिद्धसेन दिवाकरजी ने उज्जयनी में कल्याण मंदिर नामक पार्श्वनाथ स्वामी का महान अद्भुत और चमत्कारी स्तोत्र बनाया, शिवलिंग नीचे से अवन्ती नाथ पार्श्वनाथ स्वामी की दिव्य अद्भुत प्रतिमा प्रगट हुई। राजा विक्रम ने जैनधर्म को अंगीकार किया। श्रीसंघ भी सिद्धसेन दिवाकर के इस चमत्कार और धर्म प्रभावना को देखकर चकित हो गये। और बाकी के पांच वर्ष माफ किये। तथा उनके रचे हुए "नमो ऽर्हत्सूत्र०" को पूज्य आगम रूप प्रधान जैन साहित्य में स्थान नहीं दिया गया। तथापि, स्वयं रचकर बोलने योग्य स्तुति स्तवन-पूजा स्तोत्र वगैरह की आदि में मुख्य स्थान दिया गया।

पाठ २१ वां

स्तवन का अर्थ

श्रीमद् यशोविजय उपाध्यायजी महाराज भगवान् आदीश्वर प्रभुके उत्तम उत्तम गुणोंको स्मरण करके, उनके शरीर की अत्यन्त सौन्दर्यता पर मुग्ध बन कर आश्चर्यचकित हो प्रभु को अपने अन्तःकरण के उत्कट भाव से स्तवना करते हैं। कि—

हे जगत् के जीवन, हे जगत् के प्यारे, ऐसे हे मरुदेवा माता के नन्दनलाल! आपके मुख कमल को देखने से अत्यन्त सुख उत्पन्न होता है, आपके दर्शन से बड़ा ही आनंद आता है ॥१॥

हे मरुदेवा के लाल! आपकी आँखें तो मानो कमल की पाँखड़ी ही हैं, और आपका मनोहर ललाट तो अष्टमी के अर्द्धचन्द्र की भाँति शोभायमान होता है। हे प्रभु आपका मुख कमल तो शरद् पौर्णिमा के पूर्ण एवं शीतल चन्द्र की भाँति अत्यन्त उज्ज्वल निर्मल एवं शान्त प्रकाश वर्षाता है, और आपकी उत्तम वाणी तो बड़ी ही सुमधुर व रसीली है ॥२॥

हे प्रभु ! आपके सुन्दर एवं मनोहर शरीर में एक हजार और आठ सुलक्षण विराजमान अच्छे मन को मुग्ध करने वाले हैं। आपके हस्त और चरण कमल की रेखाएं चित्त को चुराने वाली हैं तथा देह के भाग में तो अनगिनती रेखाएं हैं ॥३॥

हे मरुदेवा नंदन ! आपके प्रत्येक अंग प्रत्यंग में इतनी अधिक सुन्दरता व मनमोहकता है मानो वे इन्द्र, चन्द्र, सूर्य और मेरु पर्वत—इन सब के गुण लेकर बनाया है, एक में सब गुण नहीं मिल सकता है, हे देव ! मुझे तो बड़ा भारी अचरज ये ही होता है कि—ये ऐसा परमोत्कृष्ट भाग्य कैसे और कहाँ से आया होगा ? ॥ ४ ॥

वास्तव में ही हे मरुदेवा नदन ! आपने सर्व दोषों को दूर करके संसार के समस्त गुणों को अंगीकार किया है – आपने अपने आप ही अपनी आत्मा को पवित्र गुणों से परिपूर्ण कर लिया है।

हे प्रभो ! स्तुतिकार—यशो विजय का भी आपके समान सुख समूहरूपी मोक्ष पद प्राप्त हो ॥५॥

पाठ २२ वां

उवसग्गहर सूत्रार्थ

उवसग्गहर—यह श्री पार्श्वनाथ भगवान का महा चमत्कारी स्तोत्र है महा मगलकारी और प्रभावशाली मन्त्र है, और समस्त दुष्टग्रहादि एव आधि, व्याधि उपाधि, रोग, शोक, भय को नाश करने वाला पार्श्वनाथ प्रभु का स्तवन है—इसमे बतलाये हुए 'विषहर फुलिंग नाम के मन्त्र को गले मे जो धारण करता है, उसको दुष्ट ग्रह, रोग मरकी व भयङ्कर विषम ज्वरादि बीमारियाँ शान्त हो जाती हैं ॥ १ ॥

वो मन्त्र तो दूर रहा, लेकिन आपको नमस्कार करने मात्र से ही बहुत बडा फल मिलता है, आपको नमस्कार करने से—मनुष्य तो क्या लेकिन तिर्यंचो मे भी प्राणी दुःख, दरिद्रता वा दुर्भाग्यादि नहीं पा सकते हैं ॥ २ ॥

चितामणि रत्नसमान, व कल्प वृक्ष से भी अधिक फलदायी ऐसे आपके सम्यग् दर्शन रूपी रत्न प्राप्त होने के बाद जीव ससार के दुःख मे

रहित एव अनन्त अखड सुख में परिपूर्ण ऐसे मोक्षपद को पाता है ॥४॥

इस मुताबिक हे महा यशस्विन्! भक्ति समूह से सम्पूर्ण भरे हुए हृदय से आपकी स्तवना की। इसलिये हे देव! हे पार्श्व जिनचन्द्र—भवो भवमें आप मुझे सम्यग् दर्शन को दीजिये—हर जन्ममें मुझे एक जैन धर्म ही का शरण हो ॥ ५ ॥

पाठ २३ वां

उवस्सग्गहर की कथा

भद्रबाहु और वराह नाम के दो ब्राह्मण पुत्रों ने श्री यशोभद्र महाराज के पास में दीक्षा ग्रहण की। भद्रबाहु स्वामी को बहुश्रुत होने से आचार्य पदवी मिली। वराह ने भी आचार्य पदवी की मांगणी की, लेकिन गुरु महाराज ने अयोग्य समझ कर न दी। इस पर वराह ने सयम को त्याग दिया।

ज्योतिष् का उत्तम ज्ञान होने से, उसे राजा की ओर से सन्मान मिला। एक समय भद्रबाहुस्वामी विहारकरते२, उसी शहर में आ पहुचे। दैवयोग से उस समय राजा के यहाँ पुत्र जन्म हुआ, और सब नगरवासी लोग हर्ष प्रगट करने आये। लेकिन भद्रबाहु स्वामी

न आये। पूर्व ईर्ष्या में वराह ने इस बात को राजा से कहा और भद्र स्वामी के प्रतिकूल राजा को भड़काया। श्री सघ ने यह बात गुरु से प्रगट की। स्वामी ने कहा "हम हर्ष और शोक एक साथ प्रगट करेंगे, क्योंकि यह बालक ७ वे दिन अकस्मात् बिल्ली द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगा।"

वराह को स्वामी की यह बात मालुम हुई। उसने कहा "नहीं नहीं, यह बालक पूरे सौ वर्ष की आयु वाला होगा।" राजा ने सारे शहर की बिल्लियों को शहर के बाहर निकलवा दिया।

सातवें दिन बालक को धाय माता राज पुत्र को गोद में लेकर खिला रही थी कि इतने ही में, किवाड की आगल, जिसका आकार बिल्ली के सदृश्य था, बालक के ऊपर गिर पड़ी और मर्म स्थान में चोट लग जाने से तत्काल ही बालक मृत्यु के शरण हुआ।

सारे नगर में हाहाकार मच गया। स्वामी की वाणी सत्य हुई। राजा की भक्ति स्वामी के प्रति बढ़ी।

वराह लज्जा के मारे वहाँ से चल दिया। कुछ समय बाद मरकर व्यन्तर हुआ, और श्री सघ को नाना प्रकार से हैरान करने लगा।

उस समय श्री सघ की विज्ञप्ति से भद्रबाहु स्वामी ने महान् चमत्कारी तथा प्रभावक "उवसग्गहर"

नामक पार्श्वनाथ स्वामी का एक उत्तम स्तोत्र स्तवन बना कर श्रीसंघ को अर्पण किया।

उसके पढ़ने, सुनने तथा श्रवण और स्मरण करने से श्री अधिष्ठायक देव तथा पार्श्वयक्ष पार्श्वनाथ स्वामी के भक्त देवता प्रत्यक्ष आकर श्रीसंघ के कष्टों को निवारण कर जाते। ऐसे चमत्कारी स्तोत्र का किसीने दुरुपयोग कर बारबार जरा जरा से काम के लिये देवों को हैरान करने लगे।

जब देवताओं ने यह बात प्रगट की तब—भद्रबाहु स्वामी ने भविष्य के लाभालाभ का ध्यान में लाकर स्तवन की अन्तिम दो चमत्कारिक गाथाओं को निकाल दिया। इससे देव को सन्ताप होगया।

वर्तमान ५ गाथाएं भी बहुत महत्व वाली है। तथा पढने-सुनने से तथा स्मरण करने से विघ्नों उपद्रवों को शान्त करने वाली है।

पाठ २४वाँ

जय वीयराय का सूत्रार्थ

हे वीतराग प्रभो! जगतगुरो! आपकी जय हो, आप जयवना वर्तो! आपके प्रभाव से मुझे

वैराग्य हो, मार्गानुसारिता प्राप्त हो और वांछित फल की सिद्धि हो ॥१॥

१ लोक विरुद्ध कार्य का त्याग २ सद्गुरु व माता पिता को सेवा, ३ परोपकार, ४ शुद्ध गुरु का संयोग और ५ उनकी आज्ञा का पालन ये मुझे हमेशा के लिये मिले ॥२॥

हे प्रभो ! जिन शासन में नियाणा का निषेध होने पर भी—मैं "भवोभव आपकी चरण सेवा-भक्ति मिले" ऐसी भावना करता हूँ ॥३॥

आपकी स्तुति के प्रभाव से—शारीरिक और मानसिक दुःख का नाश, आठ कर्मों का नाश, समाधि पूर्वक मृत्यु, सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ॥ ४ ॥

सब मंगलिकों में भी मंगलिक, सब कल्याणों का कारण और सब धर्मों में श्रेष्ठ—ऐसा जैन धर्म का शासन जयवंता वर्तता है ॥५॥

अपने मन से मनकी इच्छानुसार प्रभु के गुण गाने के बाद प्रभु से अंतिम प्रार्थना करके चैत्यवंदन संपूर्ण किया जाता है ।

दुनिया में लोग ईश्वर की प्रार्थना करके धन, धान्य, पुत्र, परिवार, राज्य सुख वगैरह मांगते हैं, किन्तु

ऐसा मागने के लिये भगवान ने मना किया है, क्योंकि यह कोई बडी प्रार्थना नहीं है।

जैन संस्कार से वासित आत्मा जन्म मरण रूप संसार से घबराकर मोक्ष मार्ग को चाहता है। उसकी हमेशा भावना। गुरु और बडों की सेवा करना, दुःखी जीवों पर परोपकार करना, प्रभु के चरणों की सेवा आदि की रहती है।

पाठ २५ वां

कायोत्सर्ग का अर्थ और हेतु

इस प्रकार संपूर्ण चैत्यवन्दन करने के पश्चात् ध्यान और हार्दिक स्तुति के द्वारा प्रभु का वंदन किया जाता है। यह भी वन्दन करने का साधन है। मन वचन काया प्रभु के वंदन वगैरह में लगाना यही कायोत्सर्ग का मतलब है। साक्षात् प्रणामादि वंदन के बिना भी उत्तरोत्तर श्रद्धा, बुद्धि, धैर्य, चिंतवन और हार्दिक एकाग्रता से कायोत्सर्ग होता है। तीर्थंकर परमात्मा को वंदन, पूजा, सत्कार, सन्मान करने से किसी प्रकार का कष्ट प्राप्त नहीं होता है।

अरिहंत भगवान को नमो अरिहंताणं कह कर नमस्कार पूरा नहीं किया जाय वहां तक मौन ध्यान और शरीर की स्थिरता से काउसग्ग करना चाहिये।

" "उसमें ऊँचा नीचा श्वास चलना है खांसी, छींक,

उवासी, डकार, अधोस्वास या सपीत का उछाल आवे, शरीर फरक या और कोई कठिनाई उपस्थित हो तो भी काउस्सग्ग में विचलित न हो और चुपचाप सीधा रहे। अन्नत्थ सूत्र में ऐसी कष्ट शरीर सम्बी छूट दी गई है।

फिर मन में एक नवकार गिनकर नमो अरिहंताण कह कर नमोऽर्हत् के बाद प्रभु के सामने एक गभीर अर्थ वाली स्तुति बोली जाती है।

आज जो स्तुति तुम बोले तो इसका अर्थ तो तुम अच्छी तरह समझ गये होंगे?

मनोहर—हां! पिताजी! इसमें अष्टापद, पावापुरी, गिरनार, सम्मेतशिखर आदि तीर्थ पर विद्यमान तीर्थङ्कर परमात्मा की स्तुति है।

इस प्रकार अनेक प्रकार चैत्यवंदन पूरा करके यथा शक्ति पच्चक्खाण करना चाहिये।

प्रभु को नमन करके दोनों वापिस पिछले पैरों से मंदिर के बाहर गये

पाठ २६ वां

चैत्यवंदन का भावार्थ

मनोहर—पिताजी। चैत्यवंदन में तो बहुत अच्छी तरह से भगवान् की भक्ति का क्रम है।

काउस्सग्ग में ध्यान करने से भी प्रभु का वन्दन सत्कार सन्मान होता है ?

पिता—इसके करने से श्रद्धा, भक्ति बुद्धि, धीरज वगैरह गुण प्राप्त होते हैं। तो फिर क्या कमी रह सकती है ?

मनोहर—पिताजी ! आप हमेशा चैत्यवदन इससे किया करते हैं ?

पिता—हा मनोहर ! मनुष्य को सात दफे हमेशा चैत्यवदन करना चाहिये। किन्तु मैं तो सिर्फ तीन ही वार करता हू।

मनोहर—पिताजी ! मुझे अब हमेशा प्रात काल मे एक समय चैत्यवदन करने की इच्छा होती है।

पिता—मनोहर ! एक दफे सवेर मे करने का तो तेरा मन है। दोपहर का पूजा के समय करेगा तो दो दफे हो जायगा। कभी २ शाम को दर्शन करते समय करेगा तो तुझे तीन दफे चैत्यवदन करने का लाभ मिलेगा।

मनोहर—पिताजी ! अभी इस पर्यूषण के दिनों मे तो तीनों समय चैत्यवदन करुगा।

पिता—परमात्मा के द्वारा किये हुए उपकारों को स्मरण करके उनकी जितनी भक्ति की जाय उतनी कम है। साथ ही उनकी भक्ति करने से अपने मन में पवित्रता बढ़ती है और आत्मा निर्मल होता है।

मनोहर—सचमुच पिताजी! यह आपका कहना अक्षरश: सत्य है।

पिता—मनोहर! तू बड़ा होजायगा तब चैत्य-वदन के अर्थ की बड़ी २ पुस्तकें अपने पूज्यपाद आचार्य देवों ने बनाई हैं उनको पढ़ना। उस समय तुझे चैत्यवदन की खूबी का पता लगेगा।

पाठ २७ वां

पर्व-तिथि-का-सन्मान

मनोहर—पिताजी! अब हम घर चलें?

पिता—वाह! गुरु महाराज को वदन किये बिना घर कैसे जा सकते हैं?

मनोहर—हां पिताजी! मैं भूला। वदन करके ही घर चलेंगे।

पिता—नहीं। देखो प्रथम हम गुरु महाराज को वंदन करेंगे। पीछे मुझको आज "अट्ठाई-घर" होने से उपवास का पचक्खाण करना है। इसके बाद हम व्याख्यान सुनेंगे, और फिर घर चलेंगे। कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है?

मनोहर—मैं भी उपवास करूंगा।

पिता – तुम्हारे से उपवास नहीं हो सकेगा।

मनोहर—आप तो करते हैं। मेरे में क्यों नहीं हो सकेगा?

पिता—कारण! उपवास में सारे दिन कुछ खाना नहीं होगा, सिर्फ उकाला हुआ गर्म पानी पी सकोगे।

मनोहर—क्या सेव मरमरे भी नहीं खाये जा सकते?

पिता—नहीं।

मनोहर—तो दूध ही पी लूंगा।

पिता—अरे! भाई! दूध भी नहीं पी सकते।

मनोहर—तो फिर मेरे से उपवास नहीं हो सकेगा।

पिता—अच्छा ! तो तुम "एकासणा" [एकवार भोजन] करना।

मनोहर—हां ठीक है। शाम को दूध पी लूंगा, और एक समय भोजन कर लूंगा।

पिता—नहीं भाई ! इसमें भी शाम को दूध नहीं पी सकते।

मनोहर—मुझको अभी भूख लगी है। शाम को दूध पी सकूं, तो ही एकासना हो सकेगा, नहीं तो नहीं।

पिता—अच्छा मनोहर ! तुम "बे आसना" करना कारण तुम बचे हो, तुम से भूखा नहीं रहा जा सकता। बे आसने में दोनों समय भोजन कर सकोगे किंतु इसमें भी गरम पानी पीना पड़ेगा। आज के पर्व दिनका इतना भी सन्मान रखना ही तुम जैसे बालकों के लिये बहुत है। तुमको आज के पर्व की आराधना का लाभ भी मिलेगा।

मनोहर—हां ! पिताजी ! मैं "बे आसना" तो बड़ी प्रसन्नता से कर लूंगा।

पाठ २८ वां

पर्वाधिराज का आगमन और गुरु महाराज का व्याख्यान

[मनोहर अपने पिता के साथ उपाश्रय में प्रवेश करता है। और व्याख्यान सुनने को आये हुए श्रावक-श्राविकाओं के समूह के कोलाहल (वार्तालाप) को सुनता है।]

मनोहर—ओ हो ! पिताजी ! यहाँ पर तो बहुत से मनुष्य (श्रोता गण) व्याख्यान सुनने के लिये बैठे हुवे हैं और पूज्य गुरु महाराज भी व्याख्यान बाँचने की तय्यारी में है। हम वदन करके पच क्खाण ले लें—आप 'उपवास' का पचक्खाण लेना, और मैं 'बिआसणे' का पच्चक्खाण लेऊँगा, आप मुझे बिआ सणा कैसे करना—यह सिखलाएँगे ?

पिता—हाँ ! जरुर सिखाऊँगा। तुम्हारी मा भी सिखा देगी, और बहिन मालती भी आज एकासणा या बियासना जरुर करेगी।

पच्चक्खाण हम गहुँली होने के बाद-
पोरसी पढ़ाते समय ले लेंगे।

मनोहर—गहुँली और पोरसी क्या? मुझे
समझाइये!

पिता—सुनो गुरुमहाराज मङ्गलाचरण करते हैं।
मैं तुम्हें पीछे समझाऊंगा।

मंगला-चरण

नमो अरिहंताणं ॥ १ ॥
नमो सिद्धाणं ॥ २ ॥
नमो आयरियाणं ॥ ३ ॥
नमो उवज्झायाणं ॥ ४ ॥
नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ५ ॥
"एसो पंच नमुक्कारो ॥ ६ ॥
सव्वपावप्पणासणो ॥ ७ ॥
मंगलाणं च सव्वेसिं ॥ ८ ॥
पढमं हवइ मंगलं ॥ ९ ॥

"हे भव्य जीवों! परमोपकारी परमात्मा महावीर देव ने समस्त प्राणियों के हित के लिये अमृत समान मीठी वाणी से जो हितोपदेश दिया था, उसी का अनु-

करण करके हम भी उनके वचनानुसार हितापदेश देते हैं—आप सब श्रोतागण सावधान होकर सुनो।'

पाठ २६ वां

जैन पर्व दिवसो

श्रावक—जी साहिब!, जी साहिब! जी

गुरु—आज अट्ठाईधर का दिन है, वह अपने पर्वाधिराज श्री पज्जुसण पर्व का पहिला दिन है।

आप सब जानते हैं कि अपने शासन में—बीज, पाचम, आठम, इग्यारस, चउदस, पूनम और अमावस्या इन बारा तिथियों के सिवाय मास में दूसरा भी—

ज्ञान पाचम
मेरु तेरस
मोन ग्यारस
आखा तीज [अक्षय तृतीया]
चोमासी चवदस
आयबील (नवपद आराधना) की चैत्री और आसोज की ओलिया
दिपावली और

इनके सिवाय दूसरे भी कई एक पर्व हैं। २४ तीर्थंकर भगवंतो के पाच कल्याणकपर्व के १२० दिन भी आप जानते ही हो।

यह सब पर्व कहलाते हैं। उन सब में वडा पर्युषणा पर्व है। उससे वह पर्वाधिराज कहलाता है।

पाठ ३० वां

पर्व दिन की महत्ता

पर्वाधिराज श्री पर्युषणा पर्व का-आज पहिला दिन है-अट्ठाईधर। "चतुर किसान समय पाकर, वर्षा ऋतु की मौसम में। जिस प्रकार खेत को साफ करके बीज बो देता है। य वानी में प्रमाद नहीं करता है-उसी तरह धर्म रूपी बीज बोने के लिये पर्युषणा पर्व इन ८ दिनों की मौसम है-इस सु अवसर को पा कर जो लोग प्रमाद कर पुण्य की बोनी नहीं करते हैं-वे फिर प्रमादी किसान की तरह सारे वर्ष भर ही पछताते हैं-और भूखों मरते हैं। इसलिये इन आठ दिनों में जितना अधिक से अधिक धर्म ध्यान (आत्म-साधन) करना हो-कर लेओ। दूसरे जितने भी

५

मोटे मोटे पर्व हैं—उन सब का राजा और नायक—यही पर्वाधिराज पर्युषण पर्व है। धर्म साधन का यही परमोत्कृष्ट मौसम है। धर्म से ही प्राणी को समस्त सुख मिलता है। धर्म ही से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है और देश समाज और व्यक्ति की उन्नति भी धर्म से ही होती है इस सिद्धान्त में कभी भी फरक पड़ता नहीं इसलिये धर्म ही उत्कृष्ट में उत्कृष्ट मंगल है। इसलिये-क्षण क्षण और लव लव के प्रमाद को त्याग कर इस पर्व के प्रत्येक क्षण क्षण का सदुपयोग करना चाहिये"।

पाठ ३१ वां

पर्वों का राजा—पर्वाधिराज—

'सम्वत्सरी-महापर्व'

गुरु—"आप सब महानुभावों को यह विचार होता होगा कि—यह पर्युषण पर्व सब पर्वों का राजा क्यों कहा गया है ?—इसका भी खुलासा यह है कि—सामान्य रीति से हमारे आर्यावर्त (भारतवर्ष) में हवा पानी इत्यादिक कुदरती-प्रकृति के नियमानुसार उसके अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों में—शीत काल एवं ग्रीष्मकाल के ८ महिनों में मनुष्य सर्व प्रकार के उद्योगादि अपने २ कार्य-

धन्धों में लगे रहते हैं। जब वर्षा ऋतु का आगमन होता है, तब सब अपने २ काम धन्धों को न्यून कर विश्राम लेते हैं। लोगों को व्यापारादि धंधों की उपाधियों, और उनके उद्योगादि झंझटों से फ़ुरसत मिलती है और इसीलिये वे इन दिनों में आत्मा की उन्नति के लिये और शान्ति के लिये धर्म कार्यों में मन को स्थिरता पूर्वक अधिक लगा सकते हैं। इसीलिये चौमासे के ये चार महिने धर्म-करणी के योग्य होते हैं।

इसके सिवाय इन चार महिनों में साधु सन्तादिक भी किसी एक स्थान पर ही स्थिर होकर रहते हैं-पर्युषणा करते है। तो उनके समागम से लोग और भी अधिक प्रकार से धर्म-कार्यों में तत्पर हो सकते हैं। पर्युषणा शब्द का 'स्थिर होकर रहना' अर्थ होता है।

और इन चार महिनों के बीचों-बीच [भाद्रपद कृष्णा १२ से भाद्रपद शुक्ला ४ तक।] के ८ दिन विशेष दिन होने से धर्म ध्यान के लिये और भी विशेष उपयोगी हैं।

इन आठ दिनों का भी मुख्य साररूप आखरी ८वाँ दिन 'सम्वत्सरी पर्व' का है। इस तरह कुल आठ दिन का ही नहीं, लेकिन सारे सम्वत्सर-वर्ष भर के ३६० दिनों के किये हुये पाप कार्यों का प्रायश्चित्त सम्वत्सरी-प्रतिक्रमण' द्वारा लेकर, सर्व जीवों के साथ क्षमा-क्षमापना कर मित्रता करने का है।

मन वचन और काया की शुद्धता पूर्वक समस्त ८४ लाख जीवा योनि के साथ क्षमा याचना कर अपनी आत्मा को पवित्र एव निर्मल बनाने का 'सम्वत्सरी' पर्व यही सबसे उत्तम में उत्तम दिन है।

यह भी पर्युषण पर्व की महत्ता है।

तीर्थंकर परमात्मा ने यही दिन सबसे बडा अधिक पूज्य व आराध्य फरमाया है। इससे अधिक कोई पर्व नहीं है। मानों यही पर्व का राजा सबसे बडा पर्व दिन है।

पाठ ३२ वां

सम्वत्सरी और दूसरे दिन

श्रावक—सम्वत्सरी दिन को सबसे अधिक श्रेष्ठ माना गया। इसका क्या कारण?

गुरु—सुनो! भगवान् महावीर देव का फरमान है कि—"हे साधुओं!

अषाढ चौमासी (आ० शु० १४) से ५० वें दिन सम्वत्सरी पर्व होता है। ५० वें दिन से (सम्वत्सरी पर्व) से ७० दिन तक कोई भी एक स्थान स्थिर वास करना इसी का नाम पर्युषणा अर्थात् 'स्थिरता से रहना' है। उसके पहिले ५-५ पाँच पाँच दिन स्थिरता करनी, और जिस दिन से पर्युषण करो, उस दिन सांझ को वर्ष का प्रतिक्रमण कर

सर्व ८४ लाख जीवा योनी को खमाना व किसी भी जीव के साथ मन, वचन, काया से विरोध न रखना।

सम्वत्सरी प्रतिक्रमण (वार्षिक प्रतिक्रमण) के हेतु से ही इसे 'सम्वत्सरी प्रतिक्रमण' कहते हैं। सब पर्वों में यह 'सम्वसरी पर्व' सर्वोत्तम है। वार्षिक धर्म आराधन का दिन है, क्योंकि वार्षिक प्रतिक्रमण इस दिन किया जाता है प्रतिक्रमण में भी वार्षिक आराधना का समावेश है।

पाठ ३३ वां

मास धरः पक्खी धरः अठाई धरः और तेला धर

श्रावक—गुरु महाराज ! महिना धर, पक्खी धर, अठाई धर, कल्पधर, तेला धर, ये सब क्या हैं ?

गुरु०—इसका व्याख्या तो साधारण सी है, क्या तुम नहीं समझते ?

श्रावक—जी नहीं ! हम बराबर नहीं समझते।

गुरु०—सम्वत्सरी पर्व जो—सबमें मोटा पर्व है-उसकी आराधना एक माह [३०] पहिले से शु कर देने का प्रथम दिन 'महिना धर'

कहलाता है। [१५] पदरह दिन पहिले से आराधना करने का प्रथम दिन 'पक्खी-धर'। आठ दिन पहिले से आराधना करने का प्रथम दिन [८] 'अठाई घर'। और तीन दिन पहिले से सम्वत्सरी पर्व की आराधना का अट्टम करने का पहिला दिन 'तेला धर' [३] कहलाता है।

आराधना करने वाले-पर्व के सन्मान के लिये मास खमण, पदरह उपवास, अठाई-पाँच उपवास, और चोला, तेला, बेला एव एक उपवासादिक तप करते हैं। और—सम्वत्सरी का आखरी उपवास करके दूसरे दिन पारणा करते हैं। अर्थात् एक 'सम्वत्सरी' महान् पर्वाधिराज की आराधना के लिये ही इतने दिन पहिले से उपवासादि तप एव सब तरह को धर्म—क्रिया को चालू कर देते हैं। इससे भी इस पर्व की सब पर्व से विशेषता सिद्ध होती है।

श्रावक—भगवन्! कल्पधर का खुलासा रह गया।

गुरु०—देखो यह जरा विस्तार पूर्वक समझाना पड़ेगा। ७० दिन का पर्युषण मुनि महाराज करते हैं, यह तो तुम समझ गये?

पाठ ३४ वां

कल्पधर

श्रावक—जी हाँ।

गुरु०—इस पर्युषणा में मुनि लोगों को किस २ प्रकार वर्तना? उनके नियम बंधे हुए होते हैं। उन्हीं नियमों के शास्त्र को अपन शास्त्रमें कल्प कहा जाता है।

ऐसे कल्प बहुत से होते हैं। पर्युषण पर्व में साधू साध्वीयों को किस प्रकार रहना? करना? यही सब आचार 'पर्युषण कल्प' कहलाता है। यह कल्प बडे आगम शास्त्र पूर्वों में था, उसे श्री भद्रबाहु स्वामीने संक्षेप कर 'कल्प सूत्र' के रूप में तैयार कर दिया है। उनका पूरा नाम पर्युषणा कल्पसूत्र है।

उस कल्पसूत्र को मुनि लोग रात्रि में 'एक साधु बोलता व और सब ध्यान पूर्वक सुनते थे' तत् पश्चात् कितनाक समय बीतने पर गुजरात के प्राचीन शहर वड़-

नगर में राजा ध्रुवसेन के पुत्र की मृत्यु होजाने के कारण आप मंगल सूचक होने से—श्री चतुर्विध संघ के समक्ष इसके बाँचन की शुरुवात हुई। और तब से ही समस्त श्री चतुर्विध संघ इसे मंगल के लिये श्रवण करते हैं।

श्रावक—पर उस समय तो सम्वत्सरी के एक ही दिन सुनते ही थे, और अब तो ५ दिन तक बाँचा जाता है। इसका क्या कारण?

गुरु०—इसका कारण यही है कि अब-धर्मशास्त्रों से अपरिचित ऐसे आजकल के बाल जीवों को समझाने के लिये अर्थ सहित बाँचने का में ५ दिन सामटा निश्चित किया है।

श्रावक—५ दिन ही क्यों?

गुरु०—सम्वत्सरी तक ५ पाँच ५ पांच दिन के पर्युषण (स्थिर वास) करने की साधुओं को आज्ञा है। इसीलिये ५ दिन में सम्पूर्ण करने का विधान बतलाया है। पांच दिन पहिले शुरु करे तो पाँच से अधिक दिन हो जाय, तो प्रभु की आज्ञा भंग का दोष लगे। उन ५ में दिन में पहिला दिन पर्युषण

कल्पसूत्र प्रारम्भ करने का है—इसलिये इसका नाम 'कल्प घर' का दिन है।

बस, इसी से कल्प धर कहते हैं। धर-प्रारम्भक, धर अग्रेसर, प्रथम।

श्रावक०—कल्पधर का छट्ठ क्यों करना पड़ता है।

गुरु०—कल्पधर का तो उपवास है और दर पक्ष में आने वाली चौदश भी आती है, और पर्युषणा में आती है, तो उसकी भी आराधना विशेष प्रकार से करना चाहिये। इससे चौदश और कल्पधर यह दोनों मिलकर छट्ठ होता है।

पाठ ३५ वां

श्री महावीर जन्म व्याख्यान

श्रावक—गुरु महाराज! परमात्मा महावीर देव का जन्म पर्युषण पर्व में तो नहीं हुआ है। तो महावीर जन्म दिवस पर्युषण में क्यों रखा जाता है?

गुरु—परमात्मा का जन्म चैत्र शुक्ला १३ को हुआ है। भाद्रवा सुदी १ के दिन श्री पर्युषण

कल्पसूत्र में परमात्मा के जन्म होने का वाचा जाता है। इसलिये श्रोताजन इस महा मंगलकारी बात को सुनते ही निक्षेप के सिद्धान्त से जन्म महोत्सव करते हैं।

श्रावक—परमात्मा के जन्म का शब्द सुनते ही जब भक्त गण भक्ति के कारण उत्सव करते हैं। तब तो जिस दिन प्रभु का जन्म हुआ हो उस दिन भी महोत्सव करना चाहिये।

गुरु—चौबीसों तीथकरों के पांचों कल्याणों का अपने शास्त्रों में कहे अनुसार यथाशक्ति अवश्य आराधन करना चाहिये।

श्रावक—पर्युषण कल्पसूत्र में तो परमात्मा महावीर देव के पांचों कल्याणक सुनने में आते हैं। तो प्रत्येक का उत्सव क्यों नहीं करते हैं?

गुरु—किसी न किसी रूप में भक्ति का चिह्न होना चाहिये। देखो! उस दिन परमात्मा की माता को आये हुए १४ स्वप्न उतार कर उनकी पूजा करने से परमात्मा के च्यवन कल्याणकी पूजा होती है। उसी

प्रकार प्रभु को पाठशाला में भेजते समय, विद्याभ्यास के उत्सव के स्मरणार्थ कागज़ दवात, कलम आदि साधन भक्त लोग विद्यार्थियों को वितीर्ण करते हैं। और प्रभुजी का पाठशाला में गमन का उत्सव करते है।

पाठ ३६ वां

च्यवन कल्याणक की भक्ति

श्रावक—क्या स्वप्न उतारने में खुद परमात्मा के च्यवन कल्याणक की भक्ति है ?

गुरु—हां, ऐसा है। परमात्माने इस भूमि पर जन्म लिया, और अर्हत् पद प्राप्त करके लोगों को धर्म का मार्ग समझा कर मोक्ष मे गये। और तीनों लोकों मे पूज्य गिनाये। आज भी लोगा में धर्म दिखाइ देता है वह प्रभाव भी उनका ही है। इसका प्रारंभ वे स्वर्ग में से च्यव कर माता के गर्भ में उत्पन्न हुए, तब से हुआ। सबसे पहिले इसके समाचार चौदह स्वप्न के द्वारा माता द्वारा जगत् में प्रसिद्ध हुआ।

तीर्थंकर परमात्मा जैसे लोकोत्तर पुरुष के

गर्भ मे आने की सब से पहिले सूचना देने वाले यह चौदह स्वप्न हैं—इससे ये भी आदर करने योग्य हैं।

हाथी, सिंह, वृषभ, वगैरह का हाथी सिंह वृषभ रूप से पूजा नहीं करते हैं। किंतु "जगद्बन्धु परमात्मा इस ससारमें जन्म लेने के लिए स्वर्ग मे से आ रहे हैं" उसकी सूचना देने वाले होने से ये भी पूजनीय हैं।

श्रावक—ओ हो! इस गूढ़ रहस्य का तो हमें पता भी नहीं था।

गुरु—हा! बहुत से मनुष्यों को इस बात का पता भी नहीं है। महापुरुषों की सूक्ष्म मानसिक व आध्यात्मिक सिद्धांत पर की गई यह व्यवस्था जैसी तैसी नहीं है। यदि तुम बराबर ध्यान दोगे तो तुमको पता लगेगा कि—

इस पर्युषणा कल्पसूत्र मे स्वप्नों का वर्णन श्री भद्रबाहु स्वामी ने इतने अच्छे विस्तार से किया है कि—बहुत मनुष्यों को आश्चर्य होता है। हाथी, सिंह, वगैरह का इस

पवित्र शास्त्र में इतना अधिक वर्णन क्यों किया होगा ?

परतु महापुरुषों का एक अक्षर भी निरर्थक नहीं होता है। परमात्मा का चरित्र लिखते समय लेखक के हृदय में परमात्मा की भक्ति का कितना उत्साह हो ? इस आनद को उन्होंने विस्तार पूर्वक काव्यमय वर्णन मे किया है।

पाठ ३७ वाँ

पर्युषण पर्व की रचना

गुरु—इस प्रकार श्री पर्युषण पर्व के आठों दिनों की किस प्रकार व्यवस्था है ? यह तुम अच्छी तरह समझ गये होंगे।

श्रावक—जी हा ! यह हम बराबर समझ गये हैं।

१ सपूर्ण वर्ष में चौमासे के दिन धर्माराधन के लिये विशेष अनुकूल हैं।

२ उसमें भी आषाढ़ चौमासी से पाच पाच दिन और भाद्रवा सुदी ४ से ७० दिन के पर्युषण मुनि महाराज करते हैं

इसलिये ये विशेष आराधना के दिन हैं।

३, ७० दिन का सब से पहिला दिन संवत्सरी पर्व रूप से सब से बड़ा दिन गिना जाता है।

४ एक महीने पहिले से आराधना करने के दिन, मासधर।

५ एक पक्ष पहिले से उसी आराधना को करने का दिन, पक्षधर।

६ आठ दिन-अष्टाह्निका अर्थात् आठ दिन पहिले से उसी आराधना को करने का दिन, यह अठाइधर।

७ तीन दिन पहिले से आराधना करने का दिन (अट्ठम करना) तेला धर।

८ पाच २ दिन के छोटा पर्युषणो में अंतिम पर्युषण में कल्पसूत्र पढ़ने का पहिला दिन, यह कल्पधर।

९ जिस दिन श्री महावीर देव के कल्प सूत्र में च्यवन और जन्म कल्याणक पढा जाय, उसका उत्सव करना, स्वप्न उतारना, और जन्म महोत्सव के निमित

श्रीफल फोड़कर यथाशक्ति व्यक्तिगत सचित्त साधर्मिक वात्सल्य होता है, और बड़े ऋद्धिमत सपरा साधर्मिक वात्सल्य करता १० तेरस का दिन अट्ठाईघर के पारणे का है। ११. चौदस तो प्रत्येक पक्ष की आराधना करने योग्य है।

१ अठाईधर २ पारणे का दिन ३ चौदस ४ कल्प धर का प्रथम दिन ५ महावीर जन्म वाचना ६ तेलाधर का प्रथम दिन ७ अठम का दूसरा दिन, जैन इतिहास की सपूर्ण काल गणना के साथ आदि नाथ नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के चरित्र को सुनना तथा पूर्व के महान् जैन सतो के धर्म वीरता का इतिहास सुनने के लिये है। ८ सवत्सरी पर्व

पाठ ३८ वाँ

पर्युषण पर्व की असर

गुरु—इस पर्व की किस प्रकार व्यवस्था की गई ? वह अब तुम अच्छी तरह समझ गये हो।

यह पर्व किसी भी तीर्थंकर परमात्मा के पाच कल्याणक मे से नहीं है अर्थात् इसके साथ किसी भी तीर्थंकर परमात्मा का खास सबध नहीं है। परंतु यह पर्व जैन धर्म का—जैन शासन का पर्व है।

तीर्थंकर परमात्मा भी जैन शासन रूपी धर्म तीर्थ के स्थापन करने वाले हैं, तथापि वे भी इसी पर्व की आराधना करके तीर्थंकर परमात्मा हुए हैं। इसी लिये वे भी समवसरण में उपदेश देने के लिये बैठते हैं उस समय नमो तित्थस्स कहकर श्री जैन शासन को नमस्कार करते हैं।

अर्थात् तीर्थंकर परमात्मा के जन्म वगैरह पॉच कल्याणकों के पर्वों की अपेक्षा इस पर्व की आराधना विशेष करना चाहिये। इस पर्व सिवाय के दिन की जाहिर आराधना इससे विशेष रूप से की जाय तो इस पर्व की आशातना गिनी जाती है।

इसलिये यह पर्व जैन धर्म का आधारभूत पर्व है।

इस पर्व में सकल सघ एकत्रित होता है।

मुनि महाराजाओं के उपदेश से व्रत वगैरह हमेशा के लिये अथवा अमुक समय के लिये भी किये जाते हैं।

उपदेश से धर्म जागृति आती है। और इसमें पूरे वर्ष तक समुदाय और व्यक्तियों का मन धर्म में ओत प्रोत रहता है।

धार्मिक कार्यों के लिये धन खर्च किया जाता है और धार्मिक खाताओं को इससे पोषण मिलता है जिससे वे अच्छी तरह चलते हैं और लोगों को उसके द्वारा हमेशा धर्म की आराधना करने का मौका मिलता रहता है।

संघके कार्य, जीव दयाके कार्य, सात क्षेत्र खाताओं को उत्तेजना तथा भावना की वृद्धि, इस प्रकार धर्म के जीव रूप दूसरे कार्य इस समय ही हुआ करते हैं।

पाठ ३६ वां

श्री महावीर प्रभु जन्मोत्सव

श्रावक—हे गुरु महाराज! जिस दिन श्रीफल सुपारी फोड़ा जाता है उसका क्या कारण है?

गुरु०—उसका कारण भी सरलता से समझ सकते हैं। देखो—

प्रभु के जन्म के बाद, जाति और स्नेही सबधी लोग श्रीफल वगैरह अनेक चीजें लाते हैं। प्रभु के बड़ावे जाति लोगों को भोजन कराते हैं तथा पहरावनी देते हैं।

उसके अनुकरण रूप—आज भक्त लोग भी श्रीफल लेकर आते हैं, अक्षत से बहुमान करते हैं। श्रीफल के विभाग करके साधर्मियों को बाटते हैं। अर्थात् सामान्य स्थिति वाले साधर्मिको को बाटते हैं, और छोटे से रूप मे साधर्मिक वात्सल्य का लाभ उठाते हैं। और ऋद्धि सपन्न श्रावक नमुक्कारसी जीमा कर जन्म महोत्सव निमित्ते साधर्मिक वात्सल्य करना है।

फल खाने की ही चीज हैं। और उसमें से सब को थोड़ा २ हिस्सा अपनी तरफ से देकर प्रभु जन्म के उत्सव का भोजन अपनी तरफ से कराते हैं। फल अनेक हैं, किन्तु श्रीफल-श्रीफल, प्रत्येक फलो मे मुख्य और उत्तम होने से अपने प्रत्येक व्यवहार में श्रीफल का बहुत उपयोग है। इसलिये इसका उपयोग शास्त्र

तथा बुद्धि से मानने लायक होने से भी बरा-
बर समझ में बैठता है।

पाठ ४० वां

पर्युषण पर्व का विशेष आराधन

कल्पसूत्र का वरघोड़ा, रात्रि धर्म जागरण,
व्याख्यान के समय सूत्र पूजा करना, धूप दीप
वगैरह करना, तपस्वियों को वासक्षेप डलवाना।
हरेक व्यक्ति वासक्षेप डलवा कर जैन संघ के
सभ्य रूप से रहने का विश्वास दिलाना, तप
स्वियों की भक्ति करना, अमारी पडह बजवाना,
सर्व जगह जीव दया का पालन कराना, आरंभ
समारंभ बंद करना, कराना, दोनों समय प्रतिक्रमण
करना, यथाशक्ति व्रत पच्चक्खाण करना, जिन मंदिर
में महोत्सव और पूजा प्रभावना करना। श्री कल्प
सूत्र भक्ति पूर्वक आदि से अंत तक श्रवण करना,
श्री कल्पसूत्र की छींक आदि से आशातना नहीं
करना। चौसठ पहोरी पौषध करना, साधर्मिक
वात्सल्य करना। अंत में यदि कुछ नहीं बन सके
तो उत्तम वस्त्र अलंकारादि धारण करके इस पर्व

का बहुमान और आराधन करना। श्रीसंघ का प्रत्येक जाहिर प्रसगों पर हाजिर रहना।

इस महापर्व की आराधना के केन्द्र भूत श्री जिन मंदिर और गुरु तरफ जाते हुए को रोके, अन्तराय करे, ऐसी किसी भी प्रवृत्ति में ध्यान नहीं देना। कितनी ही मुश्किलों का सामना करते हुए भी इस महोत्सव में हाजिर रहना, पर्व महोत्सव की अच्छी प्रभावना के लिये तन तोड़ प्रयत्न करना, यह भी पर्व की आराधना है।

इस महापर्व की आराधना करने से भी भव भव में उन्नति होती है, इतना ही नहीं, इस भव में भी आराधना करने वाले को बहुत लाभ होता है। साथ ही जगत के तमाम मनुष्यों को और प्राणी मात्र को लाभ होता है। इस पर्व की जाहिर आराधना से जगत में न्याय, नीति, धर्म, सत्कर्म वगैरह टिके रहते हैं, इनसे प्रचार होता है, और इससे जगत के तमाम मानवी और दूसरे प्राणियों को भी अचानक बहुत लाभ मिलता है। जो सूक्ष्म विचार करने से जल्दी ही मालूम होजाता है। इस पर्व में धर्म महाराजा का एकछत्र साम्राज्य प्रवर्तित होता है, और इसी की असर से

जगत के अनेक पाप, दुष्टकृत्य, भयकर वासनाए, पापियों के पाप विचार दूर रहते हैं। इसका लाभ किसी न किसी जीव को मिलता है।

इस लिये हमारा यहा उपदेश है कि चतुर्विध सघ का प्रत्येक सभ्य महापर्व की जैसे बने वैसे अच्छी तरह आराधन करके इस भव परभव को सफल करेंगे।

आगामी वर्ष मे कौन जीवित रहेगा या नहीं रहेगा ? यह कौन कह सकता है। सब को इसके लिये शका है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य विना प्रमाद किये इस पर्व की अच्छी तरह आराधना शुरु करें।

सर्व मङ्गल-माङ्गल्य
सर्व-कल्याण-कारणम्।
प्रधान सर्व-धर्माणा
जैन जयति शासनम् ॥१॥

बोलो महावीर स्वामी की जय। श्री जैन शासन की जय।

२
सम्यग् ज्ञान विभाग

पाठ १ ला

व्याख्यान की श्रेष्ठता

गुणचद्र—पिताजी ! कल पूज्य गुरु महाराज के व्याख्यान में इतना आनद आया था, कि आज फिर मेरा विचार उनका व्याख्यान अवश्य सुनने के लिये जाने का है। पर्युषण पर्व के लिये उन्होंने जो उपदेश दिया, वह बहुत सचोट और अपूर्व था।

प्रफुल्लचद्र—सचमुच, गुरु महाराज अपने जीवन-जगत के ज्योति हैं। उनके बिना हम अज्ञान अंधारे में गोते लगाते रहते हैं। अच्छा ! अब चलो, समय होगया है। अधिक देर करने से बैठने का स्थान ठीक मिलना मुश्किल है। पर्युषण पर्व जैन धर्म का जीवन प्राण है। यह कितने अच्छे तरीके से गुरु महाराज ने समझाया है ?

गुणचद्र—मंदिर में प्रभुजी के दर्शन करके पौषध-शाला में व्याख्यान के लिये जल्दी पहुंच।

× × × ×

गुरु०—महानुभावो !

श्रावक—जी ! महाराज !!

गुरु०—तुम आज सब बहुत जल्दी यहां आ पहुंचे हो। एक दम सारी सभा भर गई है।

खूबचंद सेठ—हां, जी ! आपका व्याख्यान की सरसता उसका कारण है। [पीछे देखकर] पधारो ! पधारो ! नेमचंद सेठ !

गुरु—वाह ! तुम्हारे में विनय, विवेक और उचित समझने की शक्ति भी अच्छी है।
नेमचंद सेठ जैसे समझदार, चारित्र पात्र और वयोवृद्ध लायक श्रावक को आगे बुलाकर उचित स्थान देने में सचमुच आपने बहुत विनय बतलाया।

विनयय—परंतु गुरु महाराज ! ऐसा करने में व्याख्यान में अशांति और अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

गुरु०—सचमुच, यह नहीं हो तो अच्छा है। क्योंकि यह भी दोष तो है, परंतु उचित का पालन न करना भी उससे बड़ा दोष है। कितने ही समय उत्तम कार्य के अधिक लाभ में अशांति और अव्यवस्था भी होजाती है। इस उत्तम लाभ के लिये अशांति और अव्यवस्था

की तरफ ध्यान देना कहा तक ठीक है ?। शाति और व्यवस्था जीवन का अग है। परतु वह अनिवार्य अग नहीं है, साथ ही वैसे ही अशाति और अव्यवस्था करना खास दोष भी माना जाता है। देव गुरु के सामने विवेकी पुरुष जरा भी हल्ला नहीं होने देते हैं। क्योंकि- उसमें उसकी आसातना और अवज्ञा होती है। फिर भी उत्तम स्थानों मे आगे आकर बैठने की लायकात मिलना भी उत्तम गुण है, यह टीका करने योग्य भी नहीं है।

शाति व्यवस्था कार्य का अग है। और उत्तम कार्य इससे मुख्य है। इसलिये शाति व्यवस्था के लिये उत्तम कार्य का त्याग नहीं किया जाता। उत्तम कार्य का बदले मे क्वचित थोड़ी अशाति और अव्यवस्था चला लेना चाहिये।

पाठ २ रा

उपादेयः हेयः अथवाः उपेक्ष्यः

गुरु—महानुभावों! आपको व्याख्यान खूब अच्छा लगा है, अर्थात् सुहावना लगता है, तो

सुहावना, असुहावना, यह क्या बात है ?
(व्याख्यान में एक बालक रोता है)

प्रेमचन्द सेठ—अरे ! क्यों रुलाते हो ? व्याख्यान हो रहा है, अलग लेजाकर चुप रक्खो।

गुरु—चाहे, कितना ही चिल्लावे ! क्या आपत्ति है ?

प्रेमचन्द सेठ—अरे भगवान ! इस समय तो यह रोना इतना असुहावना लगता है, कि न पूछो बात !

गुरु—असुहावना क्या ?

प्रेमचन्द सेठ—जो ! मन को अच्छा नहीं मालूम होता है। वह असुहावना है।

गुरु—सेठ ! तुम्हारे कुटुम्बी हेमचन्द सेठ के २० वर्ष के शशिकान्त के मृत्यु समय तुम रोते थे, साथ में दूसरे भी रोते थे। उस समय तुमने सब को चुप रखने के लिये अलग क्यों नहीं भेजे ? अथवा उस समय सारंगी तबले लेकर संगीत का जलसा करते हो तो सब शांत हो जाते।

प्रेमचन्द सेठ—उस समय शोक में सहकार देने के लिये रोना यही उत्तम माना गया है। संगीत का जलसा तो उस समय स्नेहियों को सचमुच असुहावना, हो लगे।

गुरु—घबराना और असुहावना, सुहावना और अच्छा, यह क्या है ?

नेमचन्द सेठ—बहुत पदार्थ सुहावना होता है, और बहुत असुहावना भी होता है।

गुरु—हमभी तो यही कहते है कि बहुत चीज अपने को सुहावनी लगती है। और बहुत असुहावनी लगती है। सुहावनी जिस प्रकार अपने को अच्छी लगती है। उसी प्रकार उनको हर-एक चाहता है। और असुहावना अपने को अच्छा नहीं लगता है। उसी प्रकार दूसरे को भी अच्छा नहीं लगता है।

विनयचन्द्र—हा जी! कितना ऐसा भी होता है—कि सुहावना भी नहीं होता है। और असुहावना भी नहीं होता है।

गुरु—हा! भाई! तुम्हारी यह बात सत्य है। इससे अपना मन उदासीन रहता है। किसी के यहा लग्न की धूमधाम हो, या मृत्यु का होना हो। अपने को जरा भी इससे मतलब नहीं है। अपने यहा का बनाव तरफ जैसी लगन रहती है वैसी लगन अपनें को उस समय नहीं होती है। अथवा परदेश में कई घटना

ऐसी होती है कि अपने को उदासीन व तटस्थ रहना पड़ता है।

विनयचन्द्र—अपनो जैसी लगन प्रत्येक प्राणी मात्र में देखी जाती है।

गुरु—सुहावना उपादेय कहा जाता है। क्योंकि वह लेन का मन होता है। असुहावना हेय कहा जाता है क्योंकि उससे घृणा होती है। और इन दोनोंम से कुछ नहीं हो, वह उपेक्ष्य कहा जाता है। क्योंकि उसको न लेने कोइच्छा होती है न घृणा होती है। अपना मन तटस्थ रहता है।

पाठ ३ रा

ज्ञान शक्ति

गुरु—प्रेमचन्द सेठ! तुमने इस रोते हुए बालक को दूर लेजाने के लिये क्यों कहा?

प्रेमचन्द सेठ—जी महाराज! मेरे मन को यह अच्छा नहीं लगा, इसलिये मैंने इस प्रकार कहा। इसमें यदि मेरे से कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करना।

गुरु—नहीं, नहीं सेठ ! इसमें अपराध जैसी कोई बात नहीं है । परंतु तुम खुद को यह समझ कैसे पड़ी ? "कि यह इस रोते हुए बालक को दूर ले जाय तो ठीक"

प्रेमचंद सेठ—मेरे मनसे ही मुझे यह समझ पड़ी ।

गुरु—परंतु, तुम्हारे मन मे यह कैसे समझ पड़ी ? यही हमारा प्रश्न है ?

प्रेमचन्द सेठ—ऐसा तो बहुत मेरे मन से मालूम होता है । मेरा मन कहता है—कि आपका व्याख्यान अमृत के घूट की तरह अच्छा लगता है । जो कि कहा नहीं जा सकता है ।

गुरु—परंतु यह अच्छा लगता है, या यह अच्छा नहीं लगता है, यह केसे निश्चय करने हो ?

प्रेमचन्द सेठ—ऐसा तो हमारा मन निश्चय करते है, हम कुछ नहीं करते हैं ।

गुरु—तो फिर तुम्हारा मन यह क्या है ?

विनयचंद्र—हमारे मन में जानने की शक्ति है । इसलिये यह सब हम जान सकता है ।

गुरु—मनमें यह जानने की शक्ति कहासे आई ? और यदि तुम्हारे मनमें जानने की शक्ति न होती तो ?

विनयचंद्र—यह कहा से आई यह हम नहीं जानते हैं। जो हमारे मन में जानने की शक्ति नहीं होती तो हम यहा नहीं आ सकते, खा पी नहीं सकते, कोई काम नहीं कर सकता। और हम भी रहते या नहीं? इसमें शङ्का है।

पाठ ४ था

ज्ञान शक्ति कहा कहां है?

गुरु—यह, अपने में समझने की शक्ति है, तब ही अपने सब चीजकों देखते हैं, धूपमे बचकर घर में जाना, जीवन चलाने के लिये खुराक प्राप्त करने का प्रयत्न करना, शेर चीते आदि से बचने के लिये रक्षक रखना, जरूरी बात माफिक चीजें सरलता से मिल सके इसलिये बाजार में माल रखना।

इच्छानुसार चीज प्राप्त करने के लिये, नहीं पसद हो उन चीजों को दूर करने के लिये, और जिनकी न इच्छा ही है, न पसद ही है, उनके लिये तटस्थ रहना, यह सब ज्ञान शक्ति की मदद से ही कर सकते ह। तुम्हारे कहने का यह भावार्थ है न?

विनयचंद्र—हां जी! यही, आपने हमारे मन के विचार को बराबर समझा दिया।

गुरु—ऐसी ज्ञान शक्ति तुम्हारे में ही है? या दूसरे किसी प्राणी में भी है?

विनयचंद्र—विचार करने से मालूम होता है कि प्रत्येक प्राणी में यह ज्ञान शक्ति पाई जाती है। देखिये पताशे की तरफ यह कीड़ी दौड़ी हुई चली आ रही है।

परंतु अभी इसके सामने यदि जलता हुआ कोयला रख दिया जाय, तो फिर यह वापिस चली जायगी।

घास देखकर गाय दौड़ती हुई चली आती है, और लकडी दिखाते ही भडक कर भग जाती है।

रोटी देखकर कौवा का का करता है, और हाथ में कंकर को देखकर उसी समय उड़ कर भाग जाता है।

अपने मंदिरजी के बगीचे में एक लज्जा वन्ती की वेल है, वह पानी पीकर एक दम खिल जाती है। परंतु वह जरासा हाथ लगाते

ही एक दम सकुचा जाती है और पत्तों को कुम्हला देती है। जितने जीते जागते वृक्ष, कीड़े, जंतु, पशु, पक्षी वगैरह देखने में आते हैं, उन सब में ज्ञान शक्ति देखने में आती है।

इस ज्ञान शक्ति के द्वारा वे अपनी इच्छा अनुसार खाने का ग्रास करते हैं, बिना जरूरत वाली चीज़ों का त्याग करते हैं इस प्रकार वे अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

गुरु—तब तुम्हारा कहना यह है कि प्राणी मात्र में ज्ञान शक्ति है।

विनयचंद्र—हां साहेब! यह हम छाती ठोक कर कह सकते हैं। ज्ञान शक्ति बिना किसी का जीवन का निर्वाह नहीं हो सकता है।

गुरु—वाह! बहादुर वाह!!

पाठ ५ वां

अज्ञान और कम ज्यादा ज्ञान शक्ति

गुरु—विनयचंद्रजी! प्रत्येक प्राणी में ज्ञान शक्ति है, ऐसा जब तुम छाती ठोक कर कहते हो, तो तुम्हीं बतलाओ कि "अभी श्री शत्रुंजय गिरि

पर आदीश्वर प्रभु के पश्चात पूजा करने में कितने पुजारी हैं ? और कौन २ क्या २ कर रहा है ?

विनयचन्द्र—यह तो मैं नहीं बतला सकता हूँ।

गुरु—क्यों ?

विनयचन्द्र—इस विषय का मुझे अभी ज्ञान नहीं होता है।

गुरु—ठीक, कुछ हर्ज नहीं। अच्छा बतलाओ तुम्हारे घर में वार्षिक खर्च कितना है !

विनयचन्द्र—दो हजार रुपये का।

गुरु—वह तुम कहा से प्राप्त करते हो ?

विनयचन्द्र—व्यापार करके,

गुरु—आज से एक महीने के अन्दर तुमको कितने रुपयों का नफा मिलेगा यह आन पाई तक बतलाओ ! अच्छे से अच्छा मुनाफा मिले यह किसको अच्छा नहीं लगता है ?

विनयचन्द्र—यह भी बिलकुल ठीक नहीं बतलाया जा सकता। हां ! इतना कहा जा सकता है कि प्रतिवर्ष खर्च जितना लगभग

मिल जाता है तो इस वर्ष भी लगभग उतना मिल जायगा।

गुरु—तो फिर तुम छाती ठोक कर कहते हैं कि प्रत्येक में ज्ञान शक्ति है फिर तुम्हारे में तो ज्ञान शक्ति कहा है?

प्रेमचद्र सेठ—विनयचद्र! अब दो जवाब। कहां गया तुम्हारा छाती ठोकना? कैसी भूल हो गई?

विनयचन्द्र—गुरु महाराज! मुझे मजूर करना पड़ेगा कि कितनी ही बातें जानने का अपने मे शक्ति है, तब कितनी ही बातें हम नहीं भी जान सकते हैं। हमारे मे इतना ही ज्ञान है ऐसा अवश्य मजूर करना पड़ेगा।

गुरु—अब तुमने बराबर कहा परन्तु एक बात का खुलासा करो कि तुम्हारे मे जो बातें जानने की शक्ति है, वे बातें जानने की शक्ति इन प्रेमचद्र सेठ में है? और तुम जो नहीं जानते हो, क्या वह ये प्रेमचद्र सेठ भी नहीं जानते हैं?

विनयचंद्र—ऐसा नहीं कहा जा सकता। जिन २ बातो को मैं जानता हूँ वे प्रत्येक बातें प्रेमचद

सेठ जानते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता, कितनी ही बातें जानते होंगे कितनी ही नहीं भी जानते होंगे। इसी प्रकार मैं जो जो नहीं जानता हूँ उसमें की भी कितनी ही वे जानते होंगे, कितनी ही नहीं भी जानते होंगे।

गुरु—तुम्हारा कहने का भावार्थ यह है कि प्रेमचन्द्र सेठ की ज्ञान शक्ति और अज्ञान तुम्हारी अपेक्षा अलग तरह का है।

विनयचंद्र—हां महाराज! प्रत्येक की ज्ञानशक्ति अलग अलग तरह की होती है। और अज्ञान भी अलग अलग होता है। प्रत्येक प्राणी मात्र में यह फर्क दिखाई देता है।

कीड़ी की ज्ञान शक्ति की अपेक्षा गाय में अधिक होती है। और गाय की अपेक्षा मनुष्य में अधिक होती है। और मनुष्यों में भी इस सभा में बैठे हुए नेमचंद सेठ की ज्ञान शक्ति अधिक है। और इससे भी आपकी ज्ञान शक्ति कितनी ही गुनी अधिक है।

गुरु—मेरे में अधिक है, ऐसा तुम कहते हो, किंतु संपूर्ण ज्ञान तो मेरे में भी तो नहीं है न?

विनयचंद्र—आपको भी यह मालूम नहीं है, कि हमारे घर में कितना सोना चांदी है? इतनी अज्ञान अवस्था आपकी भी कही जा सकती है?

गुरु—जैसे २ ज्ञान शक्ति अधिक है, वैसे २ अज्ञान कम कम है, और जैसे २ अज्ञान अधिक है, वैसे २ ज्ञान शक्ति कम है।

विनयचंद्र—हां साहेब! प्रत्येक में कम ज्यादा ज्ञान शक्ति होती है और कम ज्यादा अज्ञान भी होता है।

पाठ ६ ठा

ज्ञान शक्ति का विकास

गुरु—विनयचंद्रजी! व्याख्यान सुनने से तुमको क्या लाभ मालूम होता है? कि जिससे तुमको अच्छा मालूम होता है और तुम दूसरा सब कामकाज छोडकर यहां दौडकर आते हो।

विनयचंद्र—१ हमारे ज्ञान और अनुभव में बढोतरी होती है।

२ हमारी ज्ञान शक्ति विकसित होती है और उससे बुद्धि बढ़ती है।

३ दुनिया में अच्छा और बुरा क्या है, इसका ज्ञान होता है।

४ बुरे रास्ते जाते हुए बचने का विचार होता है।

५ अच्छे रास्ते चलने का मन होता है।

६ जैसे हो वैसे हमारा जीवन उत्तम और सस्कारी होता है और ऐसा करने के लिये उत्साह बढ़ता है।

७ ऐसा सुंदर उपदेश सुनने से आपके ऊपर, ऐसे शास्त्र रचने वालों के ऊपर, और ऐसे शास्त्रों में ज्ञान की बातें समझाने वाले तीर्थंकर परमात्मा के ऊपर, भक्ति जाग्रत् होती है।

इतने फायदे तो हमारे मन मे होते हैं। हमारा मन ठीक होने से दूसरे बाहर के जो फायदे होते हैं, वे तो अलग हैं।

गुरु—तुम ठीक कहते हो। तुमने जो फायदे बतलाये। वे फायदे इस उपाश्रय की दीवालों और खभों को भी होता है ? या नहीं ?

विनयचन्द्र—नहीं सारेब! ये तो गढ हैं। इनमें ज्ञान शक्ति है ही नहीं, केवल अज्ञान ही है।

गुरु —अज्ञान तो तुम्हारे में भी है, ऐसा तुम पहिले कह गये हो। फिर तुम्हारे में और इस खभे से क्या फर्क रहा।

विनयचन्द्र—बहुत फर्क है। मेरे में ज्ञान है और अज्ञान भी है। और मेरे ज्ञान मे घट बढ होती है। और अज्ञान में भी घट बढ होती है।

इस दीवाल और खभे मे किंचित् मात्र भी ज्ञान नहीं है। केवल अज्ञान ही है और वह अज्ञान किंचित् मात्र कभी भी नहीं घटता है। साथ ही न कभी ज्ञान होता है।

गुरु—तुम्हारे में ज्ञान बढ कर कितना बढ जाता है? और घट २ कर कितना घट जाता है, वह बतला सकोगे?

विनयचन्द्र—यह बराबर नहीं बतला सकूगा फिर भी मेरी शक्ति के अनुसार यथा शक्ति कहने का प्रयत्न करूगा।

गुरु—अच्छा बतलाओ।

विनयचंद्र—मैं छोटा बालक था तब मुझे कुछ समझ नहीं थी। फिर भी मैं कई बातें समझ सकता था, और कई नहीं। परंतु जैसे २ मेरी उम्र बढ़ती गई वैसे २ मेरे ज्ञान में वृद्धि होती चली और अज्ञान घटता गया। आपके उपदेश से भी मेरे ज्ञान में बहुत बढ़ोतरी हुई है, और इस प्रकार विचार करने से मेरे सारे जीवन में बहुत वृद्धि होगी। ऐसा मुझे मालूम होता है।

गुरु—वृद्धि ही होगी, ऐसा कैसे कह सकते हो? क्षति भी हो सकती है?

विनयचंद्र—क्षति किस प्रकार हो सकती है?

गुरु—देखो, तुम्हारे पड़ोसी शांतिदास भाई की माता ८० वर्ष की होने आई है। वे आंखों से अंधी होगई हैं। कानों से बहरी होगई हैं इससे कान से नहीं सुनने के कारण व आंखों से नहीं दिखने के कारण पदार्थ का ज्ञान उनको नहीं होता है, पहिले जो शक्ति थी वह कम होगई, इसी प्रकार तुमको भी वृद्धावस्था में ज्ञान कमी नहीं होगा, ऐसा कैसे कह सकते हैं?

विनयचंद्र—हां साहेब ! आप का कहना यथार्थ है। ऐसा हो जाना यह संभव है। ज्ञान बढ़ता घटता भी है।

पाठ ७ वाँ

संपूर्ण ज्ञान शक्ति

गुरु—अभी तुम्हारे प्रश्न का जवाब बाकी है।

विनयचंद्र—हां जी, ज्ञान बढ २ कर कितना बढता है ? और घट घट कर कितना घटता है ? ये दो प्रश्न बाकी हैं।

गुरु—तुमको याद तो बराबर है।

विनयचंद्र—आपकी सरलता पूर्वक समझाने की कृपा दृष्टि का यह परिणाम है।

गुरु—अच्छा, अब इन प्रश्नों के जवाब दो।

विनयचंद्र—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि—ज्ञान बढ़ते २ इतना बढ़ जाता है कि तमाम वस्तुओं का ज्ञान होजाय। किंचित् मात्र भी "नहीं जानते हैं" ऐसा कहा जा सकता है।

सर्व वस्तुका ज्ञान हो जाता है। वह सब जानने वाला कहा जा सकता है।

इसी प्रकार ज्ञान घटते घटते इस खभे और दीवाल जैसी बिलकुल अज्ञान अवस्था होजाय, ऐसा तो नहीं परंतु बहुत अज्ञान दशा होजाय, फिर भी थोड़ा ज्ञान तो रह ही जाता है। छोटे में छोटे जंतु और मिट्टी पानी आदि के जीवों में बहुत कम ज्ञान देखा जाता है। इससे कम ज्ञान रखने वाले जीव मिल सकते हैं। अर्थात्—

(१) सपूर्ण ज्ञानी

(२) बिलकुल अल्प ज्ञान और बहुत अज्ञान वाले जीव

(३) इन दोनों के बीच में की शक्ति वाले मध्यम। हम मध्यम दर्जे में गिने जासकते हैं।

(४) दीवाल, खंभे, मकान, आदि बिलकुल अज्ञान मय पदार्थ हैं।

गुरु—तुम अच्छी तरह यह समझ सके हो, तुम्हारी मगज शक्ति अच्छी मालूम होती है। इतनी सूक्ष्म बातें इस प्रकार कह देनी बहुत कठिन है।

विनयचंद्र—आपके प्रश्नों की सकलना ही ऐसी है कि हमारी मगज शक्ति आप से आप विकसित होती है।

गुरु—अच्छा बतलाओ, जीव संपूर्ण ज्ञानी तो हो सकते हैं ?

विनयचंद्र—क्यों नहीं होसकते हैं ? संसार में प्रत्येक संभवती वस्तु का संभव होसकता है।

गुरु—कहा ! ऐसे जीव बता सकोगे ?

विनयचंद्र—नहीं साहेब ! अभी तो नहीं बतला सकूंगा। परन्तु ऐसे संपूर्ण ज्ञानी हो सकते हैं, ऐसा ज्ञान शक्ति के घट बढ़ने के ऊपर से कह सकते हैं।

गुरु—अपने तीर्थंकर परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। तथा केवल ज्ञानी भगवंत भी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा ने इस जगत के तमाम पदार्थों को अच्छी तरह जाना। उसमें जानने का कुछ बाकी नहीं रहा, तब उन्होंने कर्तव्यका उपदेश दिया। इसके ऊपर से गणधर भगवंतों ने अपने शास्त्र रचे।

विनयचंद्र—हमको आश्चर्य होता था कि आप हमारे जैसे मनुष्य होने पर भी शास्त्र के पृष्ठ लेकर इतना अच्छा विस्तार पूर्वक विवेचन

करते हो, परतु उसका खुलासा अब समझ में आया कि—

आपने शास्त्र पढ़े हैं, वे सर्वज्ञ प्रभु के उपदेश के अनुसार रचे हुए हैं। इससे आप अनेक नई २ बातें बतला सकते है। अब उसमें कुछ आश्चर्य मालूम नहीं होता है।

गुरु—बहुत अज्ञानी जीव भी अभ्यास व प्रयत्न से अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं। और अज्ञानता में कमी कर सकते है, यह निर्णय हुआ।

विनयचद्र—हा साहब।

पाठ ८ वां

ज्ञान और अज्ञान मे भेद

गुरु—विनयचद्र ! तुम आज से कोई भी हरी वनस्पति नहीं खाने की प्रतिज्ञा करो।

विनयचद्र—क्या सारे जीवन पर्यंत मुझे हरी वनस्पति नहीं खाना चाहिये, "ऐसी आप आज्ञा करते हैं ?"

गुरु—हा ! मेरी इच्छा तो ऐसी है।

विनयचन्द्र—आप गुरुदेव की आज्ञा मेरे सिरसा वद्य है, परन्तु मेरे से इसका जीवन पर्यंत पालन होना असम्भव है। एक महीने में पांच बड़ी तिथि अथवा दस बड़ी बड़ी तिथि नहीं खाऊंगा।

गुरु—दस दिन तक नहीं खाने की प्रतिज्ञा किस लिये लेते हो?

विनयचन्द्र—मैं जानता हूं कि यह हरी वनस्पति भी एक प्रकार के प्राणी हैं और उसका उपयोग करने से उसकी हिंसा होती है। जैसे बने वैसे हिंसा कम की जाय यह जीवन चलाने के लिये अधिक उत्तम है। मैं ऐसा समझता हूं फिर भी इससे अधिक पालन करने की प्रतिज्ञा का करना कठिन है।

गुरु—ये नेमचन्द सेठ तो भोजन में कोई भी (सजीव पदार्थ) सचित्त चीज काम में नहीं लेते है, तुम भी समझदार हो कि "त्याग करना चाहिये" और वे भी समझते हैं कि "त्याग करना चाहिये।"

तुम्हारे दोनों की समझ में फर्क क्या है?

विनयचन्द्र—हम दोनों बात में तो एक समान समझते हैं परन्तु मेरी अपेक्षा उनकी समझ अधिक बलवान है कि जिससे वे त्याग कर सकते हैं और मेरी समझ उनकी अपेक्षा निर्बल है कि जिससे कि मैं त्याग नहीं कर सकता हूं।

गुरु—ठीक, त्याग नहीं कर सकते हो तो यह बात जाने दो किंतु हमेशा १० सामायिक जीवन पर्यंत करने की प्रतिज्ञा करो। इसमें बहुत लाभ है यह तो तुम समझते हो न?

विनयचन्द्र—हां। तो मैं उसका लाभ समझता हूं परन्तु मैं यह करने की हिम्मत नहीं कर सकता हूं, मेरी समझ इतनी निर्बल है।

गुरु—जितनी तुम्हारी समझ निर्बल है उतनी तुम्हारी ज्ञान शक्ति नेमचंद सेठ की अपेक्षा कम है न? तथा जितनी तुम्हारी ज्ञान शक्ति कम है उतना तुम्हारा अज्ञान अधिक है न?

विनयचन्द्र—हां साहब! ऐसा कहना पडेगा।

गुरु—जिसका ज्ञान सफल होता है, वे ज्ञानी कहे जाते हैं। जिसका सफल नहीं होता है,

उनको ज्ञान विद्यमान होते हुवे भी अज्ञानी कहा जाता है।

पाठ ६ वां

ज्ञान और अज्ञान शब्द के कितनेक अर्थ

गुरु—ज्ञान शब्द सामान्य तौर से नीचे अनुसार अलग २ अर्थ मे काम आता है।

१ ज्ञानशक्तिहोना यह भी ज्ञान में गिनाजाना है जैसे-वनस्पति मे ज्ञान शक्ति है।

२ नहीं जानते हो वह वस्तु जानना यह ज्ञान है। जैसे ६ महीने पहिले तुम हमको नहीं पहिचानते थे अब पहिचानते हो।

३ खोटी समझ हो उसको अच्छी समझ होना यह ज्ञान है। तुम्हारो ऐसो समझ थी कि "मुनिराज अपने जैसे मानव है" तथापि सब तरहका उपदेश अपने मन से कैसे देते हैं?" फिर तुमको सत्य बात का ज्ञान हुआ कि "मुनिराज जो उपदेश देते हैं, वह सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान के उपदेश

-के अनुसार रचे हुए पवित्र शास्त्रों के ऊपर से उपदेश देते हैं।"

४ शास्त्रों का अभ्यास करना यह भी शास्त्र बोध ज्ञान कहलाता है और वे अभ्यास करने वाले भी ज्ञानी कहलाते हैं।

५ इसमें भी वीतराग सर्वज्ञ भगवान के शास्त्रों का अभ्यास करनेवाले, सच्चे शास्त्रों का बोध रूप ज्ञान धारण करने वाले सच्चे ज्ञानी कहे जाते है। इसके सिवाय का शास्त्रों का अभ्यास करने वाले भी एक तरहके अज्ञानी कहे जाते है।

६ शास्त्रों का अभ्यास किया हो या न किया हो तो भी जिनके अदर सत्य की खोज करने का बुद्धि है वे अनुभव ज्ञानी कहे जाते हैं, दूसरे अज्ञानी कहेजाते हैं।

७ इसी प्रकार जो ज्ञान परिणाम मे हितकारक (उपादेय) आचरण का स्वीकार करना, अहितकारक (हेय) का त्याग करना यह सम्यग्ज्ञान कहा जाता है।

इसी प्रकार अज्ञान शब्द के भी खुले अर्थ समझना—

१ इस थम्भे में अज्ञान है इसलिये ज्ञान शक्ति नहीं है।

२ दुनिया मे ऐसी बहुत सी वस्तुएं हैं उसका अपन को अज्ञान है।

३ अच्छी वस्तु को बुरी समझना, बुरी को अच्छी समझना यह भी अज्ञान है।

४ शास्त्र बोध नहीं होना यह भी अज्ञानता है।

५ सर्वज्ञ कथित सर्वोपरि उत्तम शास्त्रों के ज्ञान सिवाय सब अज्ञान है।

६ शास्त्र का ज्ञान होने पर भी रहस्य समझने की शक्ति न हो तो यह भी अज्ञान है। जैसे तुम सचित्त वनस्पति के उपयोग करने में हिंसा समझते हो फिर भी उसका त्याग नहीं कर सकते, तुम्हारी यह समझ सच्चे उपयोग में नहीं आती। इसलिये यह भी अज्ञान है।

इस प्रकार ज्ञान और अज्ञान शब्द प्रत्येक मनुष्य बात बात में काम में लेते हैं। परंतु वह किस अर्थ में काम में लिया ? यह सुनकर इन की अपेक्षा मानने में बहुत फेर समझ दूर होती है।

पाठ १० वां

प्रामाणिक ज्ञान और अप्रामाणिक ज्ञान

गुरु—ज्ञान व अज्ञान के अभी जितने प्रकार बतलाये, वे आप भली भांति समझ सके हैं ? या नहीं ?

प्रेमचन्द्र शेठ—हां जी ! हमने उसको अच्छी तरह से समझ लिया है, क्योंकि लोग बात बात मे "पण्डितजी अच्छे ज्ञानी हैं" "ग्रामीण लोग अज्ञानी हैं" " हमको इसका ज्ञान हुआ है ।" " मुनिराज बड़े ज्ञानी हैं" "गऊ में भी ज्ञानी शक्ति है" वगैरह वगैरह बहुतक वाक्यों में ज्ञान शब्द का उपयोग होता हैं, परन्तु वे जुदे २ अर्थों मे लेते हैं। रोज उपयोग करते हुए भी आज तक मेरा लक्ष्य उस ओर गया भी नहीं, फिर भी आपके बोध देने से मेरा ध्यान भली भांति उस ओर गया है । और इसका भेद अच्छी तरह से समझमें आया है ।

गुरु—सर्वज्ञ भगवान् और महान् पूर्वाचार्यों की तुलना में हम लोग अज्ञानी हैं, पूरे ज्ञानी तो ऐसे

सर्वज्ञ भगवत ही होते हैं।

विनयचन्द्र—गुरु महाराज! आज आपने ज्ञान व अज्ञान के विषय में बहुत अच्छी तरह से समझाया है, जो कि आज का व्याख्यान अभी शुरु करने का है तिस पर भी ऐसे उपयोगी विषय को समझ पड़ने से हमको बहुत लाभ हुआ है।

गुरु—विनयचन्द्रजी! आज इस विषय का ही व्याख्यान करने में आया है।

"हरएक प्राणी की प्रकृति-चाह वाली वस्तु ग्रहण करने की और न चाह वाली छोड़ने की, और अपने को नुकसानी-निरुपयोगी वस्तु से तटस्थ रहने की देखी जाती है। फिर भी अगर प्राणी मात्र में ज्ञान शक्ति न होता, तो उसमें को एक भी प्रवृत्ति का सम्भव नहीं हो सकता है। हरएक विषय का सत्य निर्णय ज्ञान से ही होता है, और यही सत्य निर्णय करने वाला ज्ञान का प्रमाण याने प्रामाणिक ज्ञान कहते हैं।

१ किसी बात का असत्य झूठा निर्णय।
२ किसी बात का बराबर सम्पूर्ण ज्ञान न हो,

३ किसी बात का बिना ख्याल का ज्ञान हो,

४ किसी बात की मामूली जानकारी मात्र हो, या नहीं, ऐसा ज्ञान

— ये सब अज्ञान, अप्रमाण ज्ञान, अप्रामाणिक ज्ञान कहे जाते हैं। क्योंकि कोई २ अज्ञान में भी ज्ञान रहता है। तथापि वह ज्ञान प्रमाण-ज्ञान नहीं कहा जा सकता है।

किसी बात का किंचित् मात्र भी अपने को ज्ञान न हो, वह भी अज्ञान कहा जाता है।

पाठ ११ वां

प्रामाणिक ज्ञान से चलता हुआ सब व्यवहार

विनयचन्द्र—गुरु महाराज! आपने प्रामाणिक व अप्रामाणिक ज्ञान का भेद समझाया। यह तो बिलकुल ठीक है, और आप जो कुछ कह दो, और बोध दो, वह हमारे कबूल ही करना पड़ेगा। परन्तु, उसमें अपने को समझ न पड़े, क्योंकि इस तरह का प्रमाण ज्ञान और अप्र

माण ज्ञान की हमारे को कभी जरुरत पड़ती नहीं ।

गुरु —अरे ! तुमने यह क्या कहा ? तुम्हारे ही जीवन में तो हिरते फिरते सब काम में जरूरत पड़तो है । एक भी काम तुम प्रमाण ज्ञान की सहायता के सिवाय नहीं कर सकते हो !

फिर भी ससार मे प्रमाण ज्ञान व अप्रमाण ज्ञान दोनो है। तुम्हारे अप्रमाणज्ञान से जो झूठा ज्ञान होता है। उससे सच्चे ज्ञान को अलग रख सच्चे प्रमाण ज्ञान से ही जीवन व्यवहार चलाने मे सावचेत रहना ही पड़ता है ।

विनयचन्द्र—क्यों ? किस तरह ?

गुरु —देखो ! सुनो ! व्याख्यान समाप्त करने का समय खतम होने को आया है, इसलिये आज तो थोड़े में उस का समज दूगा, फिर कोई दूसरे समय में सम्पूर्ण समज दूगा, आज इतने में संतोष रखो ।

विनयचन्द्र—आपकी हमारे पर पूर्ण कृपा है। तो उस बात की कुछ भी हरकत नहीं ।

गुरु—(१) सर्दी की मौसम में स्नान करने बैठते हो, तो जितना गरम जल चाहिये उतना बराबर गरम है ? या नहीं ? उसको बराबर हाथ से निर्णय बिना किये स्नान करने को नहीं बैठते हो, यह बात ठीक है न ?

(२) जीभ जल जाय ऐसा गरम दूध पीने के लिये पात्र पकड़ने में तुम्हारा हाथ कभी भी तैयार नहीं होगा। जब आम खाने लगते हो, उस समय खट्टा लगते ही उसको एक तरफ रख देते हो न ?

(३) घी, तेल, सुघ कर अच्छा लेने का प्रयत्न करते हो, कहीं खराब न आ जाय, उसको तरफ क्यों अधिक ध्यान देते हो ? गध मारने वाली जगह से निकलते समय क्यों नाक में कपड़ा ठूस लेते हो ?

(४) सर्प को देखकर भागते हो, और रास्ते में रुपैया पड़ा हो, तो फौरन उठा लेते हो न ?

(५) कोई तुम्हारी निंदा करे, तो वह तुम्हें सुनने में अच्छी नहीं लगती, और कान को

इस तरह का तुम दूर का तर्क कर उसको अपनी दूकान पर से निकाल दोगे । थोड़े ही पैसे की चोरी से तुमको इतना क्या नुकसान होजाता है ? परन्तु, तुम कहोगे कि "जो आदमी जानकर मक्खी को मार डालता है, वह कभी न कभी मनुष्य का खून करने में भी नहीं हिचक सकता है'

(१०) घिसा हुआ या दृष्टीथा लगा हुआ रूपैया खराब जानकर तुम लेते नहीं, परन्तु ठठं आवाज करते रूपैया को ठठना कर लेते हो। वृष्टि होती है तब कि अनाज अच्छा पकेगा, ऐसा मानकर भाव में कमी लेते हो। और वृष्टि नहीं हो जाती है, तब अनाज के भाव में बढ़ा देते हो।

(८) जिनेश्वर परमात्मा की शांत मूर्ति को देख कर "खुद जिनेश्वर परमात्मा की शांत मुद्रा एसी होगी।" ऐसा मन में विचार कर सकते हो।

(११) तुमने एक अहीर के बच्चे की बात सुनी है। रोज ऐसा कहके चिल्लाया करता था कि "बाघ आया बाघ आया" इससे इधर उधर के खेत वाले एक दो समय उसके चिल्लाने के

धोखे में आकर मदद करने के लिये दौड़े आये। परन्तु जब उन लोगों ने समझ लिया कि "बाघ आया नहीं, अहीर का बच्चा झूठ-मुठ ऐसी ही करता है"। इस कारण से एक दिन सचमुच बाघ आया, अहीर का बच्चा खूब-चिल्लाया, तिस पर भी एक भी आदमी उसको मदद करने को नहीं आया। क्योंकि उसका चिल्लाना किसी को सच्चा-प्रमाण युक्त लगा नहीं। एक वक्त झूठी बात से दूसरे समय की बात भी झूठी मानी जायगी।

तिसपर भी कितने मनुष्य ऐसे प्रमाणयुक्त हैं। कि सच्ची ही बात कहते हैं।

अपने बालकों का हित तुम अच्छी तरह से समझते हो, इसलिये अच्छा उपदेश देते हो, और इसको उन बालको को भी स्वीकार ही लेना चाहिये।

तुम्हारा गाव का कोई भला आदमी तुम को तुम्हारे भलाई के वास्ते उपदेश देता हो, तो तुम उसको स्वीकार लेते हो न ?

तुम देश देशान्तर गये हो, और तुम्हारे घर में चोरी हुई हो, तो तुम्हारे गांव का कोई

समझ में नहीं आया।

गुरु—तो, सुनो—

अपने जीवन व्यवहार में उपयोग में आने वाला प्रमाण ज्ञान और अप्रमाण ज्ञान भिन्न भिन्न कितनी जात के विचित्र होते हैं ? उसका तुमको भिन्न भिन्न उदाहरण देकर ध्यान दिलाया है। गरम जल तुम हाथ से पहिचान सकते हो, परन्तु आम की खटासपणा तो जीव्हा से ही पहिचानी जा सकती है। यह बात बराबर है कि नहीं ? ।

विनयचन्द्र—हा, जी !

गुरु—इसलिये प्रमाण ज्ञान अनेक प्रकार के होते हैं। उसको ध्यान दिलाने के लिये इसमें सब उदाहरण देने की जरूरत पड़ी है। अब बराबर ध्यान देकर सुनो—

विनयचन्द्र—जी, महाराज !

गुरु—ज्ञान का दो प्रकार है। ज्ञान स्वरूप ज्ञान, और अज्ञान स्वरूप ज्ञान। ज्ञान स्वरूप ज्ञान प्रमाण कहलाता है, और उनका दो प्रकार है।

प्रत्यक्ष प्रमाण।
और
परोक्ष प्रमाण ।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद होते हैं–

१. पांच इन्द्रियों और मन की मदद से जो उत्पन्न होता है। उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं

और

२. साक्षात् आत्मा की मदद से उत्पन्न होता है उसे भी प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं।

पांच इन्द्रियों और मन की मदद से होता हुआ प्रत्यक्ष प्रमाणके कितने ही भेद होते हैं। और उसे मतिज्ञान कहते हैं।

और

साक्षात् आत्मा की मदद से पैदा हुए प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद होत हैं।

पहिला भेद—साक्षात् आत्मा में महात्मा लोग की सपूर्णज्ञता प्रगट होती है। जैसे कि उसकी मदद से तीनों काल की और तीनों लोक की अन्दर की और बाहर की भी

बारीक से बारीक हकीकत समझ में आसकती है। उसको ठीक सपूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। केवल ज्ञान भी कहते हैं।

२ और जिसको केवल ज्ञान न हुआ हो तिसपर भी आत्मा को ऐसा ज्ञान हो कि जिससे उस पाच इन्द्रिया और मन के मदद विनाही,(१) दुनिया के सब रूपी पदार्थो पहिचानने में आ सके, उसको अवधिज्ञान वाले प्रत्यक्ष प्रमाण कहने मे आता है।

(२) और जिनसे एक जीव मात्र के मन का विचार जानने म आ सके, उसका मन पर्यायि ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण कहने म आता है।

यह दोनो ज्ञान अपने को नहीं है। इसलिये यह दोनो ज्ञान से कौन कौन सी बात ध्यान मे आता है उसकी अपने लोगो को मालूम नहीं पड़ती।

विनयचन्द्र—आप का कहना सत्य है। इस ज्ञान का अनुभव ठीक मालूम नहीं पड़ता।

पाठ १४ वां

प्रमाण ज्ञान और अप्रमाण ज्ञान के भेदो के नाम और व्याख्या

गुरु—चमडी, जीव्हा, नाक, आंख कान और व मन के मदद से जो ज्ञान होता है वे सब मति ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान होता है इस बात को हम पहिले कह गये हैं। यह भली भांति याददास्त में है न ?।

विनयचंद्र—हां जी !

गुरु—(११ वा पाठ का) पहिले छ उदाहरणों छ इन्द्रीयों का ज्ञान से मतलब रखते हैं, तो अब तुम अच्छी तरह से समझ सकत हो। उसके नाम प्रकार ने याद रक्खो।

(१) चमड़ी—स्पर्श इन्द्रिय मतिज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण

(२) जीव्हा—जीव्हेन्द्रिय मतिज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण

(३) नाक—नासिकाइन्द्रिय मतिज्ञान प्रत्यक्ष

प्रमाण

(४) आंख—चक्षु इन्द्रिय मति ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण।

(५) कान—कर्णेन्द्रिय मति ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण

(६) मन-मानसिकइन्द्रियमतिज्ञानप्रत्यक्ष प्रमाण

विनचन्द्र—परतु, गुरु महाराज ! इन छ को हम हमेशा काम में लेते हं, ऐसा ज्ञात होता नहीं।

गुरु—हा तुम्हारा कहना सत्य है। कोई समय पर इन छ में कोई एक को भी उपयोग में लेते हो न ?।

परन्तु जब आप कोई एक का उपयोग करते हो। तब दुसरे पाच से ज्ञान करने की शक्ति तो तुम्हारे में होती ही है।

जो यह शक्ति तुम्हारे मे न हो, तो आप जरूरत के समय उपयोग ही न कर सको। जैसे कि यह खबे में देखने की शक्ति नहीं, इस लिये वे कोई भी दिन देख सकते नहीं।

विनयचन्द्र—ठीक ! अब भली भाति समझ गये।

गुरु—महानुभाव ! ठीक समझना तो अभी बहुत दूर है। क्योंकि इसमें समझने की बहुत बातें है। परंतु इस समय इतना सीखो, तो भी बहुत है। सुनो अब परोक्ष प्रमाण के भेद और व्याख्या कहते हैं।

विनयचन्द्र—हां, जी ! बहुत समय हो गया है, इसलिये बीच मे दूसरी बात अभी नहीं निकलना चाहिये। आप कहिये-

गुरु—परोक्ष प्रमाण के पाच प्रकार होते हैं—

१— स्मृति
२— प्रत्यभिज्ञान
३— तर्क—ऊह
४— अनुमान
५— आगम

इसमें से पहिला ४ का मतिज्ञान में समावेश होता है। और अंतिम का श्रुत ज्ञान में समावेश होता है।

इस पर से, ज्ञान भी पाच हुये। मति

ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्यव ज्ञान, और केवल ज्ञान। इस पाच ज्ञान में प्रमाण के हरएक भेद का समावेश होता है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और उसके सब भेद सपूर्ण रीति से साक्षात् आत्मा से नहीं होता। इससे परोक्ष प्रमाण रूप में गिने जाते है। तिस पर भी छ इद्रिय और मन से उत्पन्न हुए मतिज्ञान को लोक व्यवहार से प्रत्यक्ष भी गिना जाता है। और स्मृति आदि मतिज्ञान तथा आगम ज्ञान रूप श्रुतज्ञान लोक व्यवहार से भी परोक्ष प्रमाण कहलाता है।

पाठ १५ वां

प्रमाण ज्ञान और अप्रमाण ज्ञान के भेद के नाम और थोड़े सी व्याख्या

गुरु—(१२ वे पाठ में) बताया हुआ उदाहरण अनुक्रम से—

(१) स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क और अनुमानः के उदाहरण है।

(२) और ११ में —क्रम में आगम प्रमाण प्रामाणिक शब्द प्रमाण के दृष्टान्त दिये हैं।

(१) स्मृति—का अर्थ पिछली बात याद करना
(२) प्रत्यभिज्ञान-का अर्थ पहिली की देखी हुई वस्तु को फिर से देखकर नई याददास्त करना।
(३) तर्क—का अर्थ एक समय की बात ऊपर से दूसरा समय की बात को जान लेना।
(४) अनुमान—का अर्थ साक्षात् नहीं मालूम हो ऐसी हकीकत चिन्हों के ऊपर से जान लेना। अथवा एक वस्तु उपर से दूसरा वस्तु पहिचान लेना, उसे उपमा कहना, इसका समावेश अनुमान नामका परोक्ष प्रमाण में होता है।
(५) आगम-शब्द प्रमाण का अर्थ सच्चे आगमों की और प्रामाणिक मनुष्य की बात उपर से सची बात मालुम पड़े।

इस प्रकार से—इन्द्रिय व मन से झूठा ज्ञान भी होता है। झूठी स्मृति, झुठा प्रत्यभिज्ञा ज्ञान, झुठा तर्क, झुठा अनुमान, झुठा शब्द प्रमाण भी होता है। इन सबको अप्रमाण कहते हैं। यह सभी कुच्छ नहीं जान सकता है। ? इससे यह भी अज्ञान है।

दूरसे देखने से अपन वृक्षका ठूठ है ? या मनुष्य खड़ा है ? यह निश्चय नहीं कर सकते हैं इसको सशय अप्रमाण कहते हैं। अपने रस्ते, चले जाते हों उस वक्त अपन को घास वगैरह अनेक वस्तु छुती है। तिस पर भी उसकी अपने ध्यान रहती नहीं। उसको अनध्यवसाय-निर्विकल्प अप्रमाण ज्ञान कहते हैं। और एक लकड़ी के छेड़ा पर जलते हुए कपडे के बत्ती को बाध कर घुमाने मे गोलाकार ज्वाला दीख पडती है। अथवा बालु के मैदान में दूरसे देखनेसें जल का तालाब का भास होता है। उसे भ्रम या विपर्यय नाम का अप्रमाण ज्ञान कहा जाता है।

विनयचन्द्र—जी ! बराबर है

गुरु —यह सब शब्दों, उसकी व्याख्यायें, और उसके उदाहरण बराबर याद रखना। और हर हमेश विचारते रहना और उसकी मित्रों मे जिक्र करते रहना। उस बक्त यह अच्छो तरह से समझ मे आवेगी, नहीं तो कुछ भी नहीं समझायेगा। इसलिये निरन्तर मनन करना।

विनयचन्द्र —"तहत्ति-तहत्ति भगवत !"

पाठ १६ वां

ज्ञाता-प्रमाता, ज्ञेय प्रमेय, ज्ञान-प्रमाण। और प्रमाण का फल।

विनयचन्द्र —हे गुरु महाराज! ज्ञान को लो, चाहे प्रमाण को लो, उसकी मदद से तो अपने क्या करें? और क्या न करें? यह सब बराबर समझ सकते हैं, परन्तु यह सब समझने वाला कौन?

गुरु —अहो! इसमें क्या पूछते हो? आप खुद यह सब समझने वाले, आपका अर्थ यह है कि तुम्हारे में रहने वाला आत्मा, यह सब समझने वाला है।

विनयचन्द्र —क्या हम, और हमारे में रहने वाला आत्मा, ये दोनों अलग अलग हैं?

गुरु —अलग अलग है। यह बात कोई समय तुमको फिर से विस्तारपूर्वक समझावेंगे बस-(१) तुम्हारा आत्मा ज्ञान करने वाला है, इससे उनको ज्ञाता अथवा प्रमाता कहते हैं।

(२) अपनी योग्य–चाहवाली वस्तु लेना, अयोग्य न चाहवाली का त्याग करना, और बिना जरुर की वस्तुका फक्त ज्ञान करना, फिर लेने योग्यको लेते हो, त्याग करने योग्य हो उसे त्याग करते हो, और बिना काम की वस्तु से अलग रहते हो। ऐसी उपादेय, हेय और उपेक्ष्य, संसार में जितनी वस्तुयें, जितने गुणे, क्रियाओं या स्वभावों होते हैं, ये सब ज्ञेय प्रमेय कहलाते हैं।

(३) और जिस ज्ञान की मदद से ज्ञाता प्रमाता ज्ञेयो को प्रमेयो को जान सकते हैं। उस ज्ञान शक्ति का नाम ज्ञान–प्रमाण कहलाता हैं।

प्रमाण उत्पन्न होने से—

अपने को बिन पहिचान की वस्तु मालूम पड़ती है। थोड़ा बहुत समझ हो उस विषय में अधिक समझ होता है। अपन ज्ञान में अधिकता आती है। अच्छे मार्ग में चलने का रस्ता मिलता है। सद्वर्तन सीखने का मन होता है। और ऐसे ही सद्वर्तन सीखते २ मोक्ष भी प्राप्त होता है।

इन सबमें प्रमाण की मदद बिना कोई भी प्राणी मात्र का जीवन नहीं चल सकता है।

विनयचंद्र—हा जी ! यह बात तो सत्य मालूम पड़ती है । इस चिटीं के सामने सक्कर रखिये, तो दौड़ती आती है । और जलते हुए दियासलाई सामने रक्खी जावे, तो भागने लगती है ।

गुरु—महानुभावो ! अपने जीवन में अत्यन्त उपयोगी और चलते फिरते हर काम में उपयोगी प्रमाण का तुमको बहुत थोड़े में ख्याल दिया है, उसको बराबर याद रखना । फिर विस्तार पूर्वक समझावेंगे । और प्रथम हमने जो तुमको "गदहा जल में पड़ कर जल गया" वगैरह उदाहरण से अपेक्षा वाद को स्याद्वाद की समझ दी है, उसे अच्छी तरह से याद रखना ।

सर्वे—आपका हमारे ऊपर महान उपकार हुआ है आपकी आज्ञा के अनुसार अच्छी तरह से समझने का प्रयास हम करेंगे ।

पाठ १७ वाँ

गुरुकी गुणावली का गाना

विमला वहिन—

गुरु मीला है ज्ञानी रे ! वहिनी !

गुरु मीला है ज्ञानी रे ! वहिनी !

सर्वे—गुरु मीला है ज्ञानी रे ! वहिनी !

गुरु मीला है ज्ञानी रे !

विमला—

ज्ञान का भेद वताया रे, वहिनी !

प्रमाण का भेद वताया रे !

सर्वे-ज्ञान का भेद वताया रे, वहिनी !

प्रमाण का भेद वतायारे

विमला—

ज्ञान अने अज्ञान वताया रे वहिनी !

प्रमाण—अप्राण वताया रे ।

सर्वे—ज्ञान अने अज्ञान वताया रे वहिनी !

प्रमाण—अप्रमाण बताया रे।

विमला—प्रत्यक्ष ने परोक्ष सुणाया रे बहिनी।
पाच ज्ञान विवर्या रे।

सर्वे—

प्रत्यक्ष ने परोक्ष सुणाया रे बहिनी।
पांच ज्ञान विवर्या रे।

विमला—

ज्ञाता ज्ञेय का ज्ञान दिया रे, बहिनी।
ज्ञान का फल बताया रे।

सर्वे—

ज्ञाता ज्ञेय का ज्ञान दिया रे, बहिनी।
ज्ञान का फल बताया रे।

विमला—

वीतराग प्रभु का आगम रे, बहिनी।
ते श्रुत आधार आ काले रे।

सर्वे—

वीतराग प्रभु का आगम रे, बहिनी।
ते श्रुत आधार आ काले रे।

विनला–

ते अनुसार गुरु उपदेश देरे बहिनो !
ते उपदेश दिल धरिये रे ।

सर्वे–

ते अनुसार गुरु उपदेश देरे, बहिनो!
ते उपदेश दिल धरिये रे ।

विमला–

आवा ज्ञानी गुरु मीलिया रे, बहिनी !
जीवन सार्थक करीये रे ।

सर्वे–

आवा ज्ञानो गुरु मीलिया रे, बहिनी !
जीवन सार्थक करीये रे ।

गुरु–

सर्व-मलङ्ग-माङ्गल्य सर्व-कल्याण-कारणम् ।
प्रधान सर्व-धर्माणा जैन जयतु शासनम् ॥

सर्वे सभासदो–

सर्वज्ञ श्रीवीतराग परमात्मा की जय !
परम सत श्री गुरु महाराज की जय !
वीतराग प्रणीत दयामय धर्मको जय !

३

सम्यग् चारित्र विभाग

पाठ १ वां

सच्चे ज्ञान के फायदे

गुरु—अहा हा ! आज श्री पर्युषणा पर्व के तीसरा दिन के व्याख्यान मे ठीक समय पर सर्व बड़ी संख्या मे आगये हो ! !

देवेन्द्रकुमार—हा जो ! आज चतुर्दशी का उपवास है । और दुसरा कारण यह है कि जरा भी देर करके आते हैं, तो बैठने की जगह नहीं मिलती ।

गुरु—बैठने की जगह न मिले तो, घर जा कर बैठते हो क्या ?

देवेन्द्रकुमार—नहीं जी ! घर जा कर बैठाय कि ? तो फिर ऐसा जानने का मौका किस तरह से मिले ? सुनाय कि न सुनाय, परतु उपाश्रय मे जा कर हाजिर तो होना हो चाहिये । ऐसा करने से भी पर्वाधिराज तरफ सन्मान बता सकते है, और इतनी अराधना भी होती है । घर पर बैठ रहने से कि दुसरे काम मे लग जाने से तो पर्वाधिराज की उपेक्षा करने की

आशातना और विराधना होती है।

गुरु—जब तुमारी इच्छा सुनने की और समझने की होती है तो इस दवा की जाहिर खबर करने वाले, यह मनुष्य किस तरह से भाषण कर रहे हैं ? और दवाई के कितने सर्व फायदे बतलाते हैं ? और यह मदारी डमरू बजाके बहुत होंशी यारी से और दिलखुश भाषा से अपने खेल को बतला रहा है। उसको सुनकर भी जानने को मिलेगा। और अपने घर पर पुस्तकें रक्खें जावें, एक आदमी पढ़े और दूसरा सुने, तो क्या न चल सकते ? नाटक देखने तो जाते हो न ? उसमें भी क्या सुनने, समझने का नहीं मिलता है ?

देवेन्द्रकुमार—दुनियां में सुनाने वाले और समझाने वाले तो बहुत मिलते हैं, और जगह २ सुनने वाले और समझने वाले कितने ही रहते हैं। परन्तु इससे क्या ?

गुरु—क्यों ? इससे क्या ?

देवेन्द्रकुमार— जिसके सुनने से और समझने से हमारे में सद्वर्तन आवे, अपना सद्वर्तन का विकास होवे, सद्वर्तन क्या वस्तु है ?

यह समझ सके, सद्वर्तन का मार्ग और मिलने के उपाये समझ में आ सके, ऐसा मुद्दे का और महत्व का सुनना और समझना, उसको हम सच्चा सुनना और समझना कहते हैं।

गुरु—वाह ! तुम्हारी समझने की शक्ति बहुत ठीक है। परतु तुम सद्वर्तन वाले पूर्व पुरुषों के चरित्रों को नाटक में प्रत्यक्ष देख सकते हैं इससे तुम्हारे में सद्वर्तन आ जावेगा। तो फिर, सीकड़ी में कचराकर हमारे पास दौड़कर क्यों आते हो ? या हैरान क्यों होते हो ? नाटक देखने जावे तब तुमको आरामवाली फैलकर बैठने की जगह भी मिले, पवन मिले, भिन्न भिन्न मौज शोक और आनन्द के साथ ज्ञान भी मिले, और सद्वर्तन भी मिले।

देवेन्द्रकुमार—नहीं जी ! नाटक देखने जाय तो पहिले पैसे की जरुरत पड़ती है। एक नाटक सद्वर्तन का हो, दूसरा उससे भी कई विचित्र हो, सद्वर्तन की इच्छा रखने वाले अच्छे मनुष्य अच्छे नाटक के लिये उत्तेजना दें, तिस पर भी उस नाटक वाले को फीर भी खराब खेल दीखलाने का मौका मिलता है। इससे अच्छे

आदमी कोई भी नाटक नहीं देखते है, क्योंकि अच्छे नाटक देखने मे भी खराब नाटक को उत्तेजन देने का भी समावेश हो जाता है। नाटक वालों मे परोपकार की बुद्धि नहीं होती, उस खुद में आकर्षक सदवर्तन नहीं होता और सद्वर्तन के अनेक मार्गो के उपायें भी वे नहीं जानते हैं। वे तो सब सच्चा के तसवीर सदृश खेलने का जाने, परतु उनके हृदय में इसकी कुच्छ भी असर नहीं होती है। उनका मुख्य उद्देश पैसा कमाने का होता है। आप जैसे गुरुमहाराज का उद्देश लोग सद्वर्तनशील कैसे बने? उस तरह का प्रयत्न कर, प्रजा जीवन में अच्छा परिणाम देखने में रहता है। आपसे अच्छा बोध प्राप्त होता है। और जन समाज मे सद्वर्तन पैदा होकर बढता जाता है।

पाठ २ रा

ज्ञानी गुरु की महत्ता

गुरुः—तो, हम लोग पैसा नहीं लेते, इसलिये "मुफतीया "बिना पैसा के" तुम्हारे लिये मुफ्त

में उपदेश देते हैं, इसलिये आते हो न?

और दुसरे रीत से विचार करते हैं तो हम लोग भी मुफ्तमें उपदेश कहां देते हैं? हम लोग भी तुम्हारे यहां से आहार, पानी, पुस्तकें, वस्त्र, पात्र वगैरह लेते हैं। दुसरा भी हम लोगों के लिये दवाइ वगैरह का भी खर्च करना पड़ता है, तो तुमको इस तरह से उप देश देने के बदले में पैसा खर्चना पड़ता तो है।

देवेन्द्रकुमार—[कान में अंगुली डाल कर] नहीं, नहीं, जी! कहां आप? और कहां नाटक वाले? कहां पर्वत? और कहां सरसव? कहां हाथी! और कहां गदहा? कहां सुर्य! कहां सनकोरवा? कहां मेरु? कहां कंकड़?

आप में परोपकार की बुद्धि है। आप स्वत सद्वर्तन के मूर्ति हो, आप अपने सद्वर्तन में नित्य वृद्धि करने के लिये तत्पर रहते हो, सद्वर्तन के छोटे से छोटे नये नये विचारों आप रोज शोधते है, कि-लोग किस तरह से सद्वर्तन को सीखे? इसलिये आप अपने जीवन को अधिक से अधिक सद्वर्तन शील बनाने में तैयार रहते हो। आपके दिल में

दूसरे का भलाई ही करने की भावना रहती है। किसी भी प्रकार का स्वार्थ नहीं रखते, थोड़े से थोडे जरूरीआत से चलाते हो, और बनते तलक तपोमय जीवन व्यतीत करते हो, अपने जीवन में जरा भी बिना जरूरी वस्तु का उपयोग होने न पावे, इसके लिये आप पूरी बंदोबस्त रखते हो।

गुरु—परन्तु बदले में खाने पीने की वस्तु वगैरह तो तुम्हारे पास से ही लेते हैं न ?

देवेन्द्रकुमार—इसमें क्या ? आप जितनी योग्यता रखते हो और अच्छा रस्ता दिखाकर जितना अति महत्त्व या उपकार करते हो, उसका बदला तो आपको रोज हजारों रूपैया दे, तो भी फिर ऐसा नहीं है। धारे होते, तो आप भी हमारे तरह मकान, माल, मिलकत रख सकते, परन्तु उसमें का कुछ भी नहीं रखते हुये, मात्र कुछ नहीं जैसा खाना पीना लेकर जीवन निर्वाह चलाके सद्वर्तन सिखलाने का सबसे ऊंचा में से ऊंचा परोपकार जगत में कर रहे हो। उसके बदले में अपनी सर्व मिलकत हम लोग दे दे, तो भी थोड़ी है।

आप हमारे यहा से खाने पीने को लेते हो, उससे हमारे मन में होता है कि "हमारा खाना पीना उससे सार्थक और पवित्र होता है"। आपके जैसे पवित्र पुरुष लोगों का हमारे मकान पर आगमन हो, उस समय हमारे घर में, हरेक का मन में, हरेक चीज वस्तु में, पवित्र वातावरणका प्रभाव पड़ता है। उससे हमको कितना सब लाभ मिलते हैं ? इसलिये खाना पीना लेने वास्ते आगमन करके भी आप तो हम लोगों को बदले में बहुत कुछ दे जाते हो। इससे हमारे लिये जो आप करते हैं उसका बदला फेरने के लिये हमारे पास किंचित् मात्र भी रास्ता नहीं है। आपको हम सुखिया कहे तो हमारी जीभ कट जाना चाहिये।

पाठ ३ रा

उत्तम सद्वर्तन की योग्यता

गुरु -जो आप लोग इस भाव से ऐसे महान पर्व की आराधना के उद्देश से यहां व्याख्यान

सुनने के लिये आते हो, तो सचमुच, आप लोग योग्य श्रोतागण है। और गरमी, मकेस्त, चिल्लाहट, अशाति, अव्यवस्था वगैरह से किंचित् मात्र घबराये बिना मात्र धर्म सुनने का उद्देश से ही सर्व सहन कर बैठ कर पर्युषणा पर्वाराधन का अपूर्व मूल उद्देश को पकड रहे हो। यह तो सचमुच, अत्यन्त प्रशंसा पात्र है।

विनयकुमार—आप तपोमूर्त परोपकार के लिये शास्त्र अभ्यास, सयम, हमेशा के लिये उपदेश देने की तत्परता, वगैरह में जितने परिश्रम मह न कर रहे हो, और भी सहन करते हो, उसके हिसाब मे हम लोगो का थोडे समय क लिये परिश्रम को कठिनता किस हिसाब में है ? जिन लोगो का तत्त्व सुनने का मुख्य उद्देश नहीं होता है वे ही लोग अव्यवस्था और अशाति से घबरा कर और बहाना बतला कर ऐसे पवित्र स्थान में आने से अटक जाते है। क्योंकि उन लोगों का उद्देश तत्त्व सुनने का नहीं होता है। "अचानक सुनने मे आवे तो अच्छा, नहीं तो कुछ भी नहीं"। ऐसी मनोवृत्ति ही उन लोगो को

घबराहट पैदा करती है। जिसमें मनुष्य को रस मिलता है, उसमे कष्ट को कुछ भी नहीं समझता है। चोरी करने का रस से मारपीट और जेल के दुःखो को सहन कर लेता है। धर्म सुनने का दृढ़ रंग जिस को लगता है, वे दूसरी कोइ बात का विचार करता नहीं है।

और दूसरा यह भी है कि उपाश्रय स्थान ही ऐसा ही है जिसमें कभी न कभी धर्म श्रवण का ही मौका रहता है। कोई न कोई ऐसे महात्मा आ जाते है, जो अच्छा उपदेश देते हैं। परन्तु एक वक्त उपाश्रय मे आना छोड़ दिया, तो फिर आना मुश्कील हो जाता है। और अन्यस्थान मे कदापि धर्म तत्त्वश्रवण करने का प्रसंग मिलता है, तो कदापि दूसरी बात भी सुननी पड़ती है, जब यहां मे चित्त उद्विग्न होता है, तब धर्म जिज्ञासु भी उपाश्रय मे आने के लिये हिचकता है। इससे कष्ट उठा कर भी उपाश्रय मे आना ही चाहिये। क्योंकि धर्म प्राप्ति का यही केन्द्र है।

गुरु—सचमुच! तुम्हारा कहना सत्य है।

इससे तो समझा जाता है, कि तुम खुद

सदवर्तन शील होना चाहते हो। वह कैसे होवे ? उसके उपायें और उसके फायदे सुनने को समझने को और प्रेरणा प्राप्त करने के लिये मेरे पास आते हो न ?

विनयकुमार—हाँ, जी ! हमारा उद्देश यह ही है।

गुरु—हमको आप सदुवर्तन शील मानते हो ? कि दुर्वर्तन शील मानते हो ?

विनयकुमार—आप तो उत्तम सदुवर्तन शील वाले है, ऐसा मुझे पूर्ण पक्का विश्वास हो चूका है।

गुरु—बस तो तुम हमारे सदृश हो जावो। इससे सदुवर्तन शील बन जावोगे। हमारे तरह सपूर्ण (१) अहिंसा धर्म का पालन करो।

[२] सम्पूर्ण सयमी जीवन व्यतीत करो

अहिंसा तथा सयमी जीवन को भली भाति उपयोग मे लिया जावे, इसलिये (३) कठोर तपस्वी जीवन भी व्यतीत करो। फिर, तुम सपूर्ण सदुवर्तन शील बन जावोगे।

विनयकुमार—हे ! महात्मन ! यह थोड़ा शब्दों का भी आपका उपदेश अत्यन्त महत्त्वका उपदेश है, सत्य उपदेश है, हितकारी उपदेश है, आदर णीय, माननीय, पूजने योग्य और सन्मान करने योग्य उपदेश है। परन्तु यह हमारे से होना कठिन है।

गुरु—जो किसीसे बन सकता न हो, तो हमारे से कैसे बन सकता है !

विनयकुमार—किसी से नहीं बन सके, ऐसा तो हम लोग कैसे कहे ? परन्तु हमारे से हो सके ऐसा मुझे लगता नहीं, ऐसा हम कहते हैं।

गुरु—तो किससे बन सकता है ?

विनयकुमार—आपके जैसा उत्तम सद्वर्तन पाल्ने को योग्यता प्रथम से जिसने मिलाया है, वही पाल सकता है। जैसे कि पूर्व भव में सद्गुण के अनुसार चलते चलते बहुत उंचे पद पर पहुंचे होवे, ऐसे जीव आप के तरह सद्वर्तन सरलतासे आचार में रख सकै।

गुरु—फिर क्या इस समय यहां बैठे हुये तुम्हारे में से किसी की भी योग्यता हमारे जैसे सद्वर्तन शील आचार रखने की नहीं है ?

विनयचंद्र—नहीं, जी ! ऐसा नहीं कह सकते ! अब य किसी किसी का भी जीव की योग्यता वैसी होगी ही।

गुरु—तो फिर ऐसी पूर्व तैयारी वाले जीवों को हमको प्रथम मुख्य उपदेश देना चाहिये न ?

विनयचंद्र—हां, जी ! यह क्रम बराबर है।

पाठ ४ वां

सद्वर्तन शील क्यों होना चाहिये ?

मधुकुमार—यह सब तो ठीक है, गुरु महाराज ! परंतु मनुष्यों को सद्वर्तन शील क्यों होना चाहिये ? यही बड़ा से बड़ा प्रश्न हमारे दिल में फिरा करता है, उसका मुझे समाधान ही

नहीं मिलता है। जगत में जिसको आप सद्वर्तन कहते हो। वह समझने और पालने वाले भी जाते है और मरते है। और जिसको आप दुर्वर्तन कहते हो, उसे भी समझने वाले और पालने वाले भी जीते हैं, और मरते हैं। तो दोनों प्रकार के मनुष्य जीते और मरते है। इसलिये मेरे को लगता है कि-जिसको जिस प्रकार से अच्छा लगे उस प्रकार से अपना जीवन व्यतीत करें। इसमें क्या हर्ज ? परन्तु "दुर्वर्तन का त्याग करना और सद्वर्तन को ग्रहण करना" ऐसा उपदेश आप ध्यान देकर क्या देते हो ? और इसके लिये इतना सब कष्ट भी क्या उठाते हो ?

गुरु —मधुकुमार ! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही महत्त्व का है। और उस प्रश्न का निर्णय करना, यह अति अज्ञान और बाल जीवों के लिये भी बहुत उपयोगी है। इस प्रश्न का निर्णय बिना किये हमारे उपदेश के योग्य भूमिका भी तैयार नहीं हो सकती है।

"सद्वर्तन आवश्यक है" ऐसा जो हरएक के

मन में धर्म' तभी हमारे प्रयत्नों का कुछ भी छोटा से छोटा परिणाम आ सकता है। नहीं तो, वे सब बिलकुल व्यर्थ ही हो जाता है। चलो, हम यह कहते हैं, कि जगत में सद्वर्तन का जरूरत ही नहीं है, हरएक दुर्वतन वाला ही रहना चाहिये। यदि जगत में ऐसा दुर्वतन का ही प्रचार हो तो, लोगों का स्थिति किस तरह की होजाय? इसकी कल्पना कोजिये

मधुकुमार—जिसको जैसा अच्छा लगे वैसा करें। उसमें सद्वर्तन कि दुर्वतन कुछ भी नहीं कहना। ऐसा भिन्न भाव ही क्यों रखना? कि "इसको सदर्वतन कहना और इमको दुर्वतन कहना।" हमारे प्रश्न का यही एक आशय है। अर्थात्–दुर्वर्तन सदवर्तन कुछ नहीं इसमे लोगों की स्थिति की कल्पना करने की जरूरत रहती नहीं

गुरु—ठीक, ठीक, अब हमने तुम्हारा आशय सपूर्ण समझ लिया। अब हमारा तुमको अेक प्रश्न है, कि ऐसा कुछ भी भिन्नभाव अपने मनमें नहीं रखिये, परंतु ऐसा भिन्नभाव जगत में है, उसका क्या करना?

मधुकुमार —ऐसा भिन्न भाव जगत मे कहां है ?

गुरु —तुम भोजन करने को बैठते हो, उस समय तुम्हारे दाल म मुष्टि भर ककरीया डाला हो, तो तुम क्या उस ककरो वाले दाल को खा जावोगे ?

मधुकुमार—हम ककरिया तो निकाल दूगा, और बन सके तो उस खराबदाल के बदले दूसरी अच्छी दाल लु।

गुरु—अच्छा और खराब क्या ?

मधूकुमार—हमारे मन पसद लगे, वह अच्छा, और नहीं पसद पटै वह खराब।

गुरु —ठीक, तब तुम जगत मे अच्छा औा खराब का भेद तो स्वीकारते हो न ?

मधुकुमार —यह तो सब सब के मन में माना हुआ है। मेरे को शाग की भाजी परोसी जाय, परतु जो शाग के बदले घास हो, तो हम उसको खावें ? क्योंकि हमारे मनमें वह खराब है। और उसी घास को गाय खा जावे। क्योंकि-

उसके मनसे वह खुद के लिये अच्छा खुराक है। जिस घास के लिये मेरा मन में खराब अभिप्राय है, उसी घास के लिये गाय का मन अच्छा है। इसलिये घास खुद खराब या अच्छा नहीं है। परन्तु मन की मान्यता ही अच्छा या खराब मान लेती है।

गुरु—मन ऐसा क्यों मानता है? मन में ऐसा भिन्न भाव होना, सत्य है कि असत्य?

मधु—मन में ऐसा भिन्न भाव सत्य

गुरु—मन में वह भिन्न भाव कहां से पैदा होता है?

मधु—वह भिन्न भाव सब के मन में होना ही है।

गुरु—परंतु जगत में दाल ही हो, और ककरीया नहीं होता, तो तुम्हारा मनमे भी यह भेद मालूम पड़ता?

मधु—नहीं, कभी नहीं मालूम पड़ता, परन्तु ऐसी ऐसी वस्तुयें जगत में हैं, इसलिये मन में भिन्न भाव मालूम पड़ता है।

गुरु —महानुभाव! तब ऐसा ही कहो कि जगत् मे अच्छा और खराब है, उसकी असर मन के ऊपर पड़ता है।

हा, इतना ही सत्य है, कि एक को जो अच्छा लगता है, वह दूसरे को खराब लगता है। और एक समय जो अच्छा लगता है वही दूसरे समय खराब लगता है। इस बात का विचार गत दिवस मे हो गया है। तिसपर मे तुमने आज विशेष स्पष्टी करण कराया, यह अच्छा किया और अपने दोनो को इस नक्को विचार पर आना पड़ता है, कि जगत मे खराब और अच्छा है व है। इसलिये अपना मन भी इस तरह दो प्रकार के होने है। और इसलिये अपना मन अनुसार अपने जीवन की प्रवृत्ति और हितमें अहितमें निवृत्ति भी होती है। अच्छे तरफ अपना प्रयत्न होता है, और खराबतरफ से अपना मन पीछे पड़ता है, और उसको दूर करने के लिये अपने प्रयत्न भी करते हैं। यह कुदरत का कायदा है। यह अपना के दूसरे का गढा हुआ कायदा नहीं है। उसका अनुसरण करना ही पड़ेगा।

पाठ ५ वां

काम चलाने वाला और पारमार्थिक सद्वर्तन का उदाहरण

मधुकुमार —व्यावहारिक और पारमार्थिक सद्-व्यवहार में क्या क्या अंतर है?

गुरु —सुनो, मैं आप को उस विषय पर दो उदाहरण बतलाता हूं, उस पर से आप व्यावहारिक सद्वर्तन और पारमार्थिक सद्वर्तन का विषय और उनका अंतर समझ सकोगे।

आप व्यापार करते हो, उस समय जो २ पैसे आप के पास आता है, उसे आप "जमा" के तरफ लिखते हो, और जो २ कुछ देते हो, उसे "उधार" तरफ लिखते हो। उस लिखने के लिये आप बही तो रखते हो? न?

मधुकुमार- —जी, हां। बही बिना हमारा व्यापार का काम कुछ भी नहीं चल सकता। उसमें

किसी का पाच सौ ५००) हजार (१०००) रूपैया आता है, तो जमा करते है। और किसी को देते है, तो उसको उधार करते हैं।

गुरु—परतु, यह तो पतलाओ कि इस तरहमे पही में लिखने का कहा से सीखे हो ?

मधुकुमार—हम लोग छोटे छोटे पच्चे थे, उस समय छोटी छोटी पही पधवाकर अध्यापकजीने हमलोगों को इस तरहसे खाता पाड़कर नामा लिखने का सिखलाया था। उसके अनुसार दुकान पर बैठकर हमने नामा लिखने की शुरूआत की है।

गुरु—आप पाठशाला मे पढते थे, उस समय किसी के खाते में रूपैया ५००, १००० का जमा, उधार भी करते रहे होंगे, और नीचे दर रोज का मेल मिलाकर पाकी भी निकालते रहे होंगे, क्यों ?

मधुकुमार—जी ! हा, इस तरह से सब परोपर लिखे, तभी नामा लिखने का भली भाती सीखने में आवे।

गुरु—तो तुम्हारे उस कापी में किसी के पास से रुपेया लेना और देना होता रहा होगा ?

मधुकुमार—जी ! हां, यह सब तो लिखनाही पड़े, इसमें किसी किस्म का भूल नहीं।

गुरु——तो फिर जिसका देना तुम्हारे पास मे निकलता था उसको वह रुपेया भेज देते रहे होंगे ? कि नहीं ? और जिसके पास आप का लेना निकलता था, उसके पास से वसुल कर लेते थे ? कि नहीं ?

मधुकुमार—जी नहीं ! इसमें लेने देने का क्या ? यह तो केवल नामा सीखने के लिये झूठी झुठी रकमे जमा उधार करते थे। इसलिये किसी के पास से लेना भी नहीं, और किसी को देना भी नहीं।

गुरु——फिर तो, दुकान उपर बैठ कर आप वर्तमान समय में बही में जो नामा लिखते हो, उसमें भी किसी को लेने देने का नहीं होता होगा ?

मधकुमार—क्या नहीं ? उसमें तो जो कर्ज नि-

करने उसे पैसा देना पड़े, और जिसके पास से लेना निकले उसके पास से लेना और वसूली करने का रहता है।

गुरु—उस वही में जो देने और लेने का निकला वह देने और लेने का नहीं और इस वही में जो निकले वह पैसा पैसा देने का व लेने का। इसका कारण क्या? यह तो बतलाओ।

मधुकुमार—महाराज! प्रथम का तो मात्र सीखने के लिये बनावटी और झूठी कापीया। और दुकान उपर लिखते हैं। यह सच्चा और बरोबर वही। इतना यह दोनों में अंतर है।

गुरु—ऐसा, तो फिर झूठी और बनावटी कापीया लिखने में आप ने समय क्यों व्यर्थ व्यतीत किया?

मधुकुमार—जो ऐसा न किया जाय। तो नामा लिखने का नहीं सीख सके। और आज दीन हम लोग जो सच्चे चोपड़ा लिख सकते हैं, यह भी न लिख सकते। इसलिये सच्चा लिखने के लिये झूठा वही में लिखना सीखना पड़े।

पाठ ६ ट्ठा

तात्कालिक लाभ और परिणाममें (अंतिम) लाभ

दृष्टान्त—दूसरा—२

गुरु—पनावटी घटी और सची घटी का अन्तर तो भली भांति समझ गये।

मधुकुमार—जी, हां! अच्छीतरह से समझ गये।

गुरु—अच्छा! तुम प्रति दिन किस प्रकार से व्यापार करते हो?

मधुकुमार—हम माल खरीद करते है. और लाभ मिले इस प्रकार बेचते हैं। इस तरह से प्रति दीन थोड़ा थोड़ा लाभ इकट्ठा करते हैं। फिर वर्ष के अन्त में २०००) रुपैया पैदा कर लेते हैं।

गुरु—हरअेक साल में २०००) रूपैया पैदा कर लेते हो, क्यों ?

मधुकुमार—नहीं, जी ! किसी किसी समय में ५००), १०००) की घटी भी आ जाती है।

गुरु—अैसा होने का कारण क्या ?

मधुकुमार—हम अेक माल अमुक भाव से खरीद करे, और उसका भाव अेका अेक घट जावे, और भाव में फिर बढ़ने का संभव न रहे, और अधिक घट जावे, ऐसी डर लगती हो, तो भारी भाव की खरीद की हुई चीज को नीचे भाव से बेचनी पड़ती है, जिससे कि घटी आ जाती है। यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है।

गुरु—तो ऐसा कभी बनाव बन जाता होगा ?

मधुकुमार—जी, हा ! ऐसा झटका तो कोई कोई समय में लगता है। परन्तु कोई कोई दिन सचमुच छोटी नुकसान भी हो जावे। इसलिये

कोई दिन किसी माल में नुकसान हो जावे, तो दूसरे माल में लाभ भी मिले। ऐसा चला करता है।

गुरु—नुकसानी हो, ऐसा माल फिर से खरीद नहीं करते होंगे?

मधुकुमार—नहीं, जी! ऐसा कहीं नहीं, उसमें भी लाभ मिले ऐसा हो, तो फिर उसे भी खरीद करते हैं।

गुरु—इस से तो इतना ही समझाता हूँ, कि-किसी में प्रतिदिन लाभ मिले, और किसी में नुकसान भी हो। जिसमें रोज लाभ मिले उसमें हर हमेश लाभ मिले, ऐसा भी नहीं होता। और जिसमें एक बार घटी जावे, तो हमेशा घटी हो। ऐसा भी नहीं।

इस प्रकार से किसी का व्यापार में लाभ मिले, और किसी में घटी हो, तो क्यों व्यापार के लिये ही व्यापार जारी रखते हो।

मधुकुमार—व्यापार करने के लिये हो व्यापार

करना ऐसा नहीं, क्योंकि—दो तीन वर्ष तक बार बार अन्त में कुछ लाभ न मिले, परन्तु अपने घर से निकालना पड़े, तो सचमुच में वो व्यापार भी बन्द करना पड़ता है।

गुरु—कितने एक माल में घट्टी गई हो, और कितने एक माल में लाभ मिला हो, तो व्यापार जारी रखन में क्या हरकत है ?

मधुकुमार —ऐसा कोई माल में लाभ मिले, तो इससे क्या बने ? हम्मेश के लिये हरएक माल मे थोड़ा भी लाभ मिलता रहे। और वर्ष के अन्त मे घट्टी न जावे, और आखिर में लाभ हो, तभी दुकान जारी रखी जा सकती है। थोडा थोड़ा लाभ होना और भारी घट्टी जाय तो यह घट्टी सहन कर व्यापार जारी नहीं रख सकते। थोड़ा लाभ और थोडी घट्टी हो परिणाम में वर्ष के आखिर मे लाभ ही मिले, तभी व्यापार जारी रख सकते है। और उसी को सच्चा व्यापार भी कहते है। बाकी लेना—देना बिना लाभ के करते रहिये, तो यह सच्चा व्यापार नहीं कहा जा सकता है।

गुरु —तब तो जो व्यापार से आपको परीणाम में अंतिम लाभ मिले वही सच्चा व्यापार। और प्रतिदीन थोडा थोडा लाभ मिले और उसका अन्तिम सरवाला भी लाभ में होवे, तो वे सच्चा व्यापार। बीच में कोई वख्त किसी मे घटी जावे फिर भी एकअन्दरी तो लाभ ही मिलना चाहिये न ?

मधुकुमार —जी, हां ! ऐसा ही होना चाहिये। तभी पूरा और सच्चा व्यापार कह सकते हैं। लाखों रूपीया जमा उधार करनेमे क्या होता है ? जहां तक कि आखिर मे लाभ न हो, तो उसको "व्यापार किया" कभी नहीं कह सकते हैं।

पाठ ७ वां

पारमार्थिक सद्वर्तन

गुरु —बस, इस प्रमाण से अपने जीवनमे अनेक काम करें, तिमपर से भी जो परिणाम में लाभ

न मिले, तो यह सब निरर्थक समझना चाहिये

मधुकुमार—तो फिर परिणाम में लाभ मिले, उसके लिये क्या करना चाहिये ?

गुरु—पारमार्थिक सद्वर्तन का आचरण रखना चाहिये। पारमार्थिक सद्वर्तन से परिणाम में लाभ होता है। और तुर्त लोभ भी होता है।

फिर जब सद्वर्तन शील मरता है, और दुर्वतन शील भी आखिर में तो मरता हि है, तो फिर सद्वर्तन शील बनकर मर जाने मे इस जन्म मे कीर्ति मिलती है, और परभव में भी परिणाम मे लाभ है। सद्वर्तन शील बनकर रहने में कितनी एक कठिनाईया उठानी पडती है। और उसके साथ ही साथ लोग वश मे भी होजाते है। और व्यावहारिक लाभ में भी इसलिये स्थाई और सगीन मिलता है। दुर्वतन से कमाई हुई लक्ष्मी अनेक शत्रु उत्पन्न करन वाली होने से क्षणिक होती है। और उससे नुकसान होने का सभव रहता हो है ।

मधुकुमार —तो परिणाम में लाभ कराने वाला

पारमार्थिक सद्वर्तन का आचरण हमको किस प्रकार से सीखना ? या करना चाहिये ? आप कृपा करके समझाईयेगा।

गुरु—तुमको अरिहत देव की भक्ति, अरिहत परमात्मा के अनुयायी त्यागी गुरुओं के वचन में विश्वास, और अरिहत भगवत के शास्त्रों में बताई हुई आज्ञानुसार वर्तन, रखने के लिये समझाता हु। उसमें से हि सर्व पारमार्थिक सद्वर्तन का झरना निकलता है।

इस तिन तत्त्व की आराधना न हो सके, तो भी उसकी तरफ पूरी भक्ति रखनी और अधिक मान देना चाहिये। उसकी निंदा तो नहीं करनी चाहिये, और बनते तलक किसी को निंदा करने भी नहीं देनी। जगत् में उसकी प्रतिष्ठा बढानी चाहिये। और अपना सर्वस्व जाय, तो भी इन तीनों के रक्षण में विघ्न रूपजो कुच्छ हो, उनको दूर हटाने के लिये प्रयास करना चाहिये।

उसके अलावा, प्रतिदिन में, पक्ष में, चातुर्मास में,

वर्ष में, और अपने जीवन में आचरने योग्य कर्तव्य हमने तुमको [पहिली पुस्तक में] समझाया है, वह सब पारमार्थिक सद्वर्तने हैं।

मधुकुमार—यह सब हम ने यथाशक्ति शुरू कर दिया है। तथापि इनके हरएक का रहस्य और उसके मूल तत्त्वोंका मार्मिक रचना समझने की इच्छा होती है। क्योंकि इस वर्ष में आप जैसे गुरु महाराज का योग है। तो हम लोग हरएक बात का अच्छा निर्णय कर सकते हैं।

परन्तु, यदि आप जैसे गुरु महाराज का परिचय नहीं रहता, तो हमको किस क्रम से अपने जीवन में प्राथमिक से सद्वर्तन का विकास करना चाहिये? उसकी दिशा समझने में नहीं आ सकती है।

गुरु—यह प्रश्न बराबर है। परन्तु उनके पर शास्त्रों में ग्रंथो के ग्रंथो भरकर विस्तार किया गया है। इसलिये विस्तार से उसको समझाना हमारे लिये बहुत कठिन है। परन्तु हम

थोड़े में दिखला सकते हैं। और फिर उसका मनन करके तुम लोग पूर्वाचार्य विरचित शास्त्रों में से और गुरु महाराज की पास से धीरे धीरे नम्रता से समझने का प्रयत्न करोगे, तो समझ सकोगे।

पाठ ८ वाँ

धर्म की भूमिकायें

गुरु—सब धर्मों के प्रवर्तकों के उद्देश उस २ धर्म के अनुयायी लोगों को लाभ कराने के लिये होते हैं, परन्तु सर्व प्रवर्तक अेक सरीखे नहीं है। सब धर्म में कोई न कोई सार होगा, ऐसा मानना चाहिये, फिर हरएक धर्म सरीखा है, ऐसा न मानना चाहिये। सब धर्मों में कोई कोई मनुष्य अच्छे होते हैं। ऐसा मानना चाहिये। मगर हरएक धर्म मे सब लोग सरीखा अच्छा होते हैं। ऐसा न मानना चाहिये।

परन्तु श्री वीतराग परमात्मा अधिक मे अधिक

नि स्वार्थी और कल्याणकारी उपदेश देने वाले होते हैं। इसलिये ऐसा दृढ विश्वास रख कर उनके तरफ ही सब से अधिक भक्ति रखना चाहिये।

वीतराग परमात्मा के अनुयायी त्यागी मुनि महात्माओं अधिक से अधिक त्यागी और निःस्पृही भाव से हितोपदेश देनेवाले होते है। ऐसा दृढ विश्वास रख कर उन महात्माओं के उपदेश में सबसे अधिक विश्वास रखना चाहिये। और दुसरों की बात पर ध्यान भी न देना चाहिये।

वीतराग परमात्माओं के उपदेश अनुसार रचे हुवे शास्त्रों मे सद्वर्तन के सांगोपांग मार्ग बनाये गये है। ऐसा दूसरे शास्त्र मे कहीं नहीं है। ऐसा दृढ विश्वास रखना चाहिये। और दूसरे २ तरफ ध्यान न देना चाहिये। तिस पर भी दूसरे से हितोपदेश होने के लिये लालच मे भी नहीं आ जाना चाहिये। यद्यपि दूसरे शास्त्र में जो कुच्छ अच्छा होगा, तो उसमें से अपने धर्म गुरुओं तलाश करके तुमारे लिये जरुर का होगा अथवा तुमारा हितका होगा वो बतलायेंगे। क्योंकि सच्च और झूठ की इतनी परीक्षा शक्ति तुम्हारी न होने से कर्तव्य मार्ग सम-

मना कठिन होते है

परन्तु, जो तुम लोग समभाव बुध्धि रखकर भी इसे धर्म प्रवर्तक की सेवा करने जाओगे, सब धर्म के संत लोगों की सेवा करने को जाओगे, और सर्व शास्त्रों में से सार लेने को जाओगे तो ऐसी तो मन में बुध पड़ जायगी, जिसका उकेल मुश्कील होगा। यदि कोई योग्य सार नहीं लिया होगा, तो उसमें फसकर अपने हित से चूक जाने का प्रसग आ जाते हैं।

१ इसलिये इन तीनों मे किसी प्रसग में भी खूब अच्छी तरह से दृढ रहना चाहिये। अरिहंत परमात्मा की भक्ति मंदिरजी में आकर तरह तरह के महोत्सव से करनी चाहिये। गुरु की भक्ति निमित्त से अनेक प्रकार के प्रयत्न करना चाहिये। धर्माराधन के लिये रोज और पर्व दिन मे धार्मिक क्रियाये जारी रखनी चाहिये। ज्ञान पंचमी, मौन एकादशी वगेरह का अनुष्ठानें करना चाहिये। उपधान वगेरह याने और दूसरे अनुष्ठानें भी जारी रखना चाहिये। उजमणा वगेरह, उत्सवें

जारी रखना चाहिये।

२ तुम्हारे जीवन के हरप्रेक प्रसग मे—कोई भी प्रवृत्ति-अहिंसा, सयम और तप, इन तीनो तत्त्वों की कसोटी मे बराबर परीक्षा कर सामिल करना चाहिये। इससे तुम्हारा जीवन अति उत्तम बनेगा।

३ तुम्हारी कोई भी प्रवृत्ति तीर्थंकर परमात्माओं की आज्ञा अनुसार है? या नहीं? उसकी निशानी हरएक कार्य में सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र के मिश्रण की छाप उठी रहनी चाहिये।

४ पञ्चाचार

ज्ञानाचार—पढकर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना

दर्शनाचार—धर्म रक्षा और उनका उद्योत करने का प्रयास करना

चारित्राचार—धर्माचार का पालन करना।

तपआचार—तपश्चर्या करना और धर्म में कष्ट उठाकर भी दृढ-रहना

वीर्याचार—ऊपर के चारों आचारों में अपना सर्वस्व अर्पण करना और सम्पूर्णशक्ति लगाना। यह पांचों आचार का हेतु समझ में आवे, या न आवे, परन्तु आचार के लिये भी अवश्य पालन करना चाहिये। और बाद में समझना भी चाहिये।

कोई भी छोटा बड़ा काम करते समय और क्षण क्षण में —

ईर्या समिति

भाषा समिति

एषणा समिति

आदान भंड मत्तनिक्षेपणा समिति

पारिष्ठापनिका समिति

मन गुप्ति

वचन गुप्ति

काय गुप्ति

यह आठ प्रवचन माता को हरएक क्षण में पालने का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिये।

६. हरएक धार्मिक अनुष्ठान में,—

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, गरु वंदना प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, और प्रत्याख्यान, यह छ आवश्यकों की प्रधानता बराबर समझ लेना चाहिये।

७ जिस जिस वख्त समय मिले उस उस वख्त नवकार मन्त्र का जाप जारी रखना चाहिये।

८. साधु मुनिराज के गुणों को प्राप्त करने की अशक्ति हो, तो श्रावक के योग्य २१ गुणें प्राप्त करना और बारव्रत सपूर्ण अगर उसमें से यथाशक्ति बन शके उतना लेना।

६. और अेकदर यह सर्व कार्य प्रभुजी की आज्ञा मुजब अपने सयोग अनुसार यथा शक्ति अवश्य करना चाहिये।

पाठ ६ वां

श्रावक के इक्कीस २१ गुणें

मधुकुमार —हे गुरु महाराज! प्रथम तो अपने श्रावक

का इक्कीस २१ गुणों का स्वरूप समझ ने की हमारी इच्छा है।

गुरु —हम उसको समझाने के लिये तैयार हुये हैं। सुनो—

१. अक्षुद्र —श्रावक छिछोला नहीं होना चाहिये। उसका पेट छोछील नहीं होना चाहिये। एक हाथ से परोपकार किया हो, वो दूसरे हाथ को मालूम न होना चाहिये। इतना गभीर पना श्रावक में होना चाहिये।

उदारता और बड़ा मन यह श्रावक के मुख्य गुण हैं।

२ रूपवान् —श्रावक को देखते ही उसके शरीर का बाहरी देखाव पर से मनुष्य के मन पर सुन्दर प्रभाव पड़ना चाहिये। कुलदाय सिवाय, सपूर्ण अवयव वाला, मजबूत शरीर, अपने अपने सुक्ष्म विषयों को भी दूर से ग्रहण कर सकता हो ऐसी तीव्र ग्राहक शक्ति वाली इद्रिया, और मुलायम और चमकता

बाल, पतली और मुलायम चमड़ी, चिकने और उभड़े हुये चमकता नग तथा स्वच्छ दांत, बहुत सफेद पीला स्थूल और अति पतला नहीं ऐसा सम प्रमाण कद, श्याम छाया वाला शरीर, चंचलता और आनन्दायक दर्शन, ऐसा रूप श्रावक में होना चाहिये।

३ सौम्य स्वभाव—मधुर, शांत, हरयेक के सलाह लेने योग्य, और आश्रय लेने योग्य, श्रावक का स्वभाव होना चाहिये। बुरा और पाप के काम में वो कभी भी खड़ा न रहे।

४ लोक प्रिय—इस लोक और परलोक में विरुद्ध गिने जावे ऐसे काम नहीं करना, दानेश्वरी, विनयी सद्वर्तन शील, और लोगों को अधिक मान जिसपर उत्पन्न हो, श्रावक को ऐसा होना चाहिये। उद्धतता, बुरावेष, झूठी बढ़ाई, वगैरह से श्रावक शोभायमान नहीं होता है। तिसपर निंदा पात्र रोजगार व कृत्ये उसको नहीं करना चाहिये।

पाठ १० वां

५ अक्रूर.—श्रावक के स्वभाव मे-कितना ही विकट प्रसग हो किंतु अतिक्रूरता नहीं होनी चाहिये। और धर्म और नीति के बाहर नहीं जाना चाहिये।

६ भीरू-डरपोक —पाप और अप ा से श्रावक को डरता रहना चाहिये। लेकि। सत्कर्म और परोपकार और सत्य के लिय श्रावक को निर्भय और वीर होना चाहिये।

७ अशठ —(लुच्चई का अभाव)-श्रावक में शठता लुच्चई नहीं हो, तभी उनका विस्वास लोग रख सकते हैं।

८ दाक्षिण्यता—अपना नुकसान की परवाह नहीं करते हुवे, श्रावक का मन दूसरे के अच्छे काम को कर देने में सहज ही तैयार रहना चाहिये। जिससे की श्रावक की आज्ञा का कोई इन्कार नहीं कर सकै। श्रावक

मर्यादा-रहित नहीं होना चाहिये। दाक्षिण्य गुण से श्रावक पाप में पड़ते हुये भी अंत में पाप से बच जाते हैं।

९ लज्जावान्—श्रावक लज्जावान् होना चाहिये क्योंकि—ऐसा गुण के लिये छोटे से छोटा पाप करने के लिये भी उसका मन संकोचायमान हो जाता है। और वह जो सत्कार्य हाथ में लिए है, उसको छोड़ना हो तो भी नो छोड सकता नहीं। और शरम के लिये भी निर्वाह करता है।

१० दयालु—श्रावक अति क्रूर न हो, इतने से नहीं चल सकता, परंतु उसके मन में दया का भाव भी होना चाहिये। जीवहिंसा के कार्यों से श्रावक को दूर रहना चाहिये

११ मध्यस्थ—श्रावक को कदाग्रही नहीं होना चाहिये। परन्तु मध्यस्थ माने समतोल बुद्धि वाला होना चाहिये। जहां जितना उचित हो उतना ही समझ कर योग्य न्याय दे सके। तभी लाभ कारक गुणों को प्राप्त कर सकता है। और दोष को दूर कर सकता है।

पाठ ११ वाँ

श्रावक के इक्कीस गुण [चालु]

१२ गुण रागी—श्रावक को उत्तम गुण का अनुरागी होना चाहिये। फिर उसको ईर्षा और द्वेष न रखना चाहिये। जिस में जो गुण हो वह उसको ग्रहण करना चाहिये कदाचित् उसको बखान करने से बालजीव दोष भी ग्रहण कर ले, इसलिये उसका बखान न करे, फिर दोषवाला में भी जो गुण हो, उसको ग्रहण तो कर लेना चाहिये।

१३ सत्कथ—श्रावक सच्चाबोलने वाला और उत्तम हितकारी बात को कहनेवाला होना चाहिये। तभी विवेक का गुण पकड़ सकता है। झूठा बोलने वाले की किमत नहीं होती है। और व्यर्थ चुगली और निंदा उसको पसंद नहीं होनी चाहिये

१४ सुपक्ष—जिसका पितृ पक्ष, मातृपक्ष, श्वसुर पक्ष और दूसरे सगा सबंधी वाले भी कुल-

धान और खानदान हो, ऐसा ही श्रावक का जन समाज पर अच्छी छाप पड़ती है। अपने कुटुम्ब में भी सुख शांति और आनंद प्रमोद रख सकते हैं। हरएक मनुष्य सुन्दर, अच्छे विचार का और अच्छे कामों में लगे रहने से कुटुम्ब में शांति और पवित्रता होने से धर्म ध्यान करने को अच्छी अनुकूलता होती है।

१५ दीर्घदर्शी —श्रावक कोई भी काम दीर्घ दृष्टि से विचार कर, उत्तम परिणाम आवे ऐसा करते हैं। जिससे की पीछे से पछताने का समय नहीं आवे, और उसके जीवन में अशांति उत्पन्न न हो, और जिससे स्वीकार किया हुआ धर्म कार्य्य छोड़ देने का समय नहीं आवे।

१६ विशेषज्ञ —बुरे-भले का, गुण दोष का, उंचा नीचे का, योग्य अयोग्य का, अल्पगुणी, और अधिक गुणवान् वगैरह की परीक्षा कर लेने की शक्ति श्रावक में होनी चाहिये।

१७ वृध्धानुग—ज्ञान, तप, चारित्र, उम्मर वर्ष, गुण विवेक, अनुभव, धैर्य, सदाचार, बुध्धि, कीर्ति, और तत्त्वबोध में अपने से बड़े हों, उसका मगत रक्खे और उसके रस्ते रस्ते चले। जो, जैसे वृद्ध हों, उसके अनुसार चले, उसे वृध्धानुग कहते हैं। ऐसा करने से श्रावक-को जीवन में विघ्न नहीं होता है, और भूल न होने से सरलता से सन्मार्ग के रस्ते पर चल सकते हैं।

१८ विनय —विनय का अर्थ "योग्य शिक्षण, जीवन का योग्य सुधारा' ऐसा होता है। विनयका अर्थ "नम्रता और हरयेक के साथ उचित व्यवहार" ऐसा भी होता है, विनय सर्व गुण का जड़ है, इसलिये श्रावक को अवश्य विनयी तो होना हि चाहिये। विनयका अर्थ खुशामत समझने का नहीं है। इसलिये श्रावक को खुशामत करने की जरूरत होती नहीं।

१९ कृतज्ञ —श्रावक पर कीसी ने थोड़ा सा भी उपकार किया हो कि, थोड़ा भी लाभ दिया

हो। कि कोई काम में थोड़ी भी मदद दिया हो, उनको कभी भूल भी जाय तो नहीं, परन्तु उसको ही अधिक बदला दिये बिना रहे नहीं। बदला देता तभी हि उसके मन में शांति होती है। वहा तक यह बात मनमे याद किया करता है।

२० परोपकाररत –अनेक जात के दूसरे प्राणीयों को सहायता करने का श्रावक का ध्येय रहता है। उस प्राणीओ को सद्गुण और धर्म प्राप्त हो, यह मुख्य लक्ष्य रहता है। वह ध्येय लक्ष्य में रख कर अनेक प्रकार से उपकार करने की आदत श्रावक में होना चाहिये। सात्त्विक पुरुषों में ही ऐसा गुण हो सकता है।

२१ लब्धलक्ष्य –अपने जीवन का महान ध्येय लक्ष्य बिंदु हृदय से श्रावक को न भूलना चाहिये। जीवन का सबसे अधिक से अधिक सदुपयोग करने का श्रावक का लक्ष्य होना चाहिये। और उसे सिद्ध करने के लिये

जीवन के सब प्रसंगों मे सावध रह कर प्रयत्नें जारी रखना चाहिये।

इससे श्रावक चतुर, चपल, जल्दी रहस्य समझने वाला, और सत्कार्य का योग्य परिणाम लाने मे समर्थ हो सकता है।

इस प्रकार से २१ गुणों मुख्य गिनवाये और उसके साथ मे दूसरे अनेक ऐसा गुणों का समावेश होता है। यह गुण जिस में होता है। यह श्रावक धर्म रूपी रत्न प्राप्त करने के लिये योग्य बनते हैं।

मधुकुमार —परन्तु गुरु महराज! यह सब गुण सब मे कहां से हो सके?

गुरु०—चौथे भाग का भी गुणो हो, तो वह मध्यम पात्र गिने जाते है। और इससे भी थोडा गुण वाला हो, तो उसके लिये धर्म रत्न मिलना बहुत कठिन हो जावे।

इसलिये तुमको जहां तक हो सके वहां तक अधिक गुणों प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। यह तो तुम्हारा निश्चय

हो गया होगा कि यह गुणों जीवन में प्राप्त हो जावे तो उससे किसी भी तरह की नुकसानी का सभव नहीं रहता है। पक्के फायदा हि है।

सभा०–जी, हा ! ऐसे गुणों से अत मे अवश्य लाभ ही होने का सभव है। इसमें हमको किंचितमात्र भी शका है ही नहीं।

पाठ १२ वां

अपने धर्माचार का मूल तत्वों की समझ

अहिंसा –जहा तक बन सके दूसरे जीवों की हिंसा थोड़ी हो, और पवित्र और सस्कारी जीवन का निर्वाह चले। जहा तक हो सके वहा तक थो ो मे थोडा हिंसा से जीवन को चलाने भावना और प्रयास होना चाहिये।

संयम —जहा तक बन सके जीवन अधिक अहिंसक बनाना हो तो जहां तक हो सके जीवन को थोड़े मे थोड़ा प्रवधो और आवश्यकताओ मे चला लेना, सयम से सपूर्ण

आरोग्य के साथ आयुष्य व्यतीत कर सके, इस प्रकार से जीवन चलाना चाहिये ।

तप —और सयम रखने से हिंसा थोड़ी हो, परतु उसमे कितनी अनेक कठिनाइया का सामना करना पडता है। उस समय कठिनता, कष्ट, अपनी इच्छा से सहन करने की ऐसी आदत पाड़नी चाहिये कि जिससे सयम सरलता से बनसके और सयम का पालन अच्छीतरह से करने मे आवे तो हिंसाभी थोड़ी मे थोड़ी होता है। इच्छा से सहन करने कानामतपहै

यह तीनो ही तत्वो पर हरअेक कार्य मे समय समय पर सपूर्ण लक्ष्य में रख कर जीवन व्यवहार चलाना चाहिये ।

सम्यग् दर्शन —सच्चा मे सच्चा आदर्श दृष्टि बिंदु को सामने रख कर इस आदर्श उद्देश के अनुसार जीवन के हरअेक व्यवहार को चलाना ।

सम्यग् ज्ञान —जगत् और उसके पदार्थों का ज्ञान को प्राप्त करना चाहिये ।

सम्यक् चारित्र —आत्म विकास करने वाला सद्गुण पोषक वर्तन, और धार्मिक आचार। जैन शास्त्र मे यह तिन रत्न गिने जाते है।

ज्ञानाचार —जैन शास्त्रो का विधिपूर्वक अभ्यास करना, अभ्यास कराना, दूसरे के अभ्यास मे सहायक होना, अर्थ का चिंतन करना, तत्व की समझ प्राप्त करनी।

दर्शनाचार—देव, गुरु, और धर्म तरफ अनन्य भक्ति, अधिक मान, विश्व मे उनकी मान प्रतिष्ठा उत्पन्न करनी, शासन की जाहो जलाली हो ऐसा प्रयत्न करना, दूसरे दूसरे जीवो जैन धर्म के सन्मुख हो सके ऐसा प्रयत्न करना जिस मे वो अपने आत्म कल्याण करने का मार्ग प्राप्त कर सके।

चारित्राचार—पूजा, प्रति क्रमण, पौषध, सामायिक, बारहव्रत, पच महाव्रत धारण करना, वगेरह की साथ सबध रखने वाली क्रियाओ करनी और श्रावक का अन्यान्य आचार का पालन करना।

तपआचार —— विविध प्रकार की उपवासादिक तपश्चर्या करनी। तथा मनको शुद्धि हो ऐसा प्रायश्चित्तादिक तप करना, और तप के साथ सबंध रखने वाला अनुष्टान करना।

वीर्याचार- --उपर कहा हुआ चारो आचारो में, अपने मन, वचन, काया का संपूर्ण शक्ति का अनन्य भाव से उपयोग करना।
यह पंच आचार कहे जाते है।

पाठ १३ वाँ

अपने धर्माचार का मूल तत्वों की समझ [चालु]

इर्या समिति—कोई भी काम करने में, चालन में, बैठने में, उठने म, सोने में, वगेरह में, अहिंसा,सयम और तप इनतिन तत्त्वों सामिल रखना। इस तरह स जिस समय और जहा जैसा उचित हो उसी प्रकार से योग्य रीति से वर्तना तथा चलना।

भाषा समिति—किसी को नुकसान न हो, बुरा न लगे, इस प्रकार से और इसलिये अपने आत्मा का और दूसरे का वास्तविक हित हो, ऐसा और इसलिये बहुत थोड़ा में थोड़ा और आवश्यक हित, मान, पथ्य बोलना।

एषणा समिति—अन्न आवश्यक वस्तु जितना बन सके—निर्दोष हो और भलीभांति मशोधन और न्यायी पूर्वक वस्तुएँ प्राप्त करनी, तिस पर भी रोज को उपयोगी वस्तुएँ भी देखभाल कर काम मे लेनी।

आदान भंड मत्त-निक्षेपण समिति—
कोई भी वस्तु को लेने में, रखने में उपयोग करने मे हिंसा न हो, इस प्रकार से भलीभांति सावचेती रखना चाहिये। कामपूरते ही उपयोग मे लेना, दुरुपयोग और बीन जरूरी विशेष उपयोग नहीं करना।

पारिष्ठापनिका-समिति—
जो वस्तु निरुपयोगी हो, जिसको फेंक देना हो, निकाल देनी हो, या दूर कर देनी हो,

उसमे अहिंसा का ख्याल रख कर, जैसी वस्तु हो उस प्रमाण मे उसको दूर करने की उचित विधि अनुसार उसको दूर करदेनो, जैसा तैसा करके फेंक देना या निकाल देना नहीं चाहिये। उपर खीडकी मे से पानी फेंकने में आवे या थुकने मे आवे, तो किसी को उपर पड जावे तो झगड़ा हो जावे अथवा नीचे कोई जीव जन्तू हो, उसके उपर पडे तो वह मर भी जावे। इस उदाहरण उपरसे वस्तु फेंक देने मे भी बहुत सम्हालनेकी जरुरत होती है। कोई वस्तु ऐसी भी होती है कि तुरत फेंकदेने मे न आवे तो कुछ न कुछ नुकसान होता है। कितनी वस्तु कुछ समय बाद अमुक विधि से निकाल देने योग्य हो और उसके पहिले निकाल देने में आवे तो भी नुकसान होता है। उससे फेंक देनेमें निकाल देने में भी औचित्य रखना पडता है। यह पाँच समिति कहलाता है।

मनो गुप्ति—मन में बुरा विचार नहीं आने देना चाहिये, फिर अच्छे विचार आने देना चाहिये। मनमें संयम के साथ शांति रखने का प्रयत्न

करना, जहां तक बन सके वहांतक मन में से उथल पाथल कम कर देना।

वचन गुप्ति —इस प्रकार से जैसा बन वैसा बोलने उपर संयम रखना, नहीं बोलना पड़े और कार्य चले। ऐसी आदत पाड़नी चाहिये।

काय गुप्ति —जैसा बने वैसा शरीर की प्रवृत्ति थोडी में थोडी करनी पड़े। और वह इतना तक कि शरीर की प्रवृत्ति भी न करनी पडे और जीवन निर्वाह चले, वैसी स्थिति रखनी।

यह तिन गुप्तिकहा जाती है।

पाच समिति और तिन गुप्ति मिल कर अष्ट प्रवचन माता कहा जाती है, संयम धर्म की रक्षा करने में यह आठों माता की तरह रक्षा करती है।

सामायिक—सोना और मिट्टी वगरह उपर समान बुद्धि हो जाय, ऐसा प्रयत्न करना। रोज कम से कम अेक सामायिक तो अवश्य करना। पाच आचार पालना। पोसह करना और ऐसी दूसरी कोई भी आत्म विकास

करने वाला आचार पालना भी एक तरह का सामायिक है। सामायिक पोषक क्रिया करनी।

चतुर्विंशति स्तव —जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति, उसमें उद्देश्य करके देववंदन, चैत्यवंदन, संघ यात्रा, महापूजा वरघोडा, प्रतिष्ठा, त्रिकाल दर्शन, चैत्यपरिवाडि वगैरह करना।

गुरुवंदन—गुरुमहाराज का विनय, और अभिमान करना। वंदन, नमन, दो वंदना देना अब्भुट्ठिओ सूत्र से क्षमा मांगनी। आहारादिक में सारसंभाल। वैयावृत्य करना यह सब गुरु वंदना है।

प्रतिक्रमण—पंचाचारकी भूल का मिच्छामि दुक्कड देना, प्रायश्चित्त लेना, आलोयण लेनी, पांच प्रतिक्रमण करना, इरिया वहिया का प्रतिक्रमण करना, वगैरह।

कायोत्सर्ग—शेष पांच आवश्यकों में जाग्रती।, शासन सेवा में जाग्रती, विविध क्रियाओं

आने वाला कायोत्सर्ग करना। धर्म और शासन का सन्मान करना, मन, वचन और काया का सपूर्ण भोग देना, और उनके लिये हर तरह का जरूरी कष्ट सहन करना।

प्रत्याख्यान—नमुक्कारसी से लेकर आयंबिल एकासणा, उपवास वगेरह का पच्चक्खाण करना, बारह व्रत तथा पाच महाव्रत स्वीकार ने का प्रत्याख्यान लेना। जहा तक हो सके वहा तक जगतमे जो पाप होता है उनपाप का भाग थोडा आवे, इस प्रकार से अपनी इच्छा पूर्वक त्याग कर गुरु महाराज के पास उनका प्रत्याख्यान सूत्रो मे उच्चार कराना चाहिये।

यह छ आवश्यक कहे जाते है



पाठ १४ वां

सम्यक् चारित्र की श्रेष्ठता

हे महानुभावों ! परमात्मा श्री वीतराग देव ने भिन्न भिन्न अनेक जीव पारमार्थिक सदाचारका पालनकर अपने आत्मा की उन्नति कर सकें, ऐसा सख्याबध चारित्र के प्रकारब तालाये हैं। इसमें से तुम्हारे लिये मुख्य और सरलता स समझ में आवे ऐसे थोडे बहुत हम ने यहा पर समझाये हैं। उनको ध्यान में रख कर, जहाँ तक बन सके वहा तक उनका पालन करना और प्रथम पुस्तक के चारित्र विभाग में बताये हुए रोज के, पक्ष के, मास के, चार महीने के, वर्ष के और जींदगी के धर्म कार्य जारी रखना, जिससे तुम्हारी आत्मा जरूर शुध्ध होती जावेगी, और अत में परमार्थलाभरूप मोक्ष तक पहुँच जावेगी। और जहा तक मोक्ष तक नहीं पहुँचेगी, वहा तक भी तुम्हारे जीवन को अवश्य पवित्र बनावेंगे।

हे महानुभावों ! जीवन का, ज्ञान का, समझ

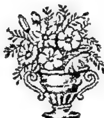
का और सर्व अच्छी प्रवृत्तियों का अंतिम सार यही सम्यक् चारित्र है। जीवन का उचे से उचा आदर्श भी यही है। इसलिये समझ में आवे या नहीं आवे, परन्तु महा पुरुषों ने समझ पूर्वक अेकत्र करके रक्खें हैं अेसे अमृत मय औषध की गोलीयां रूप धर्माचार का उपयोग करेंगे तो अवश्य तुम्हारे मन के सबरोग मिट जावेंगे। और यह गोलियां काम में लेते लेते उसका सब प्रभाव मालूम पड़ेगा। और उसकी आंतरिक रहस्य भी प्रमाण और गुरुओं की मदद से समझ लेना।

सर्व—अहो! गुरु महराज! सचमुच, आप हमारे लिये कल्पवृक्ष समान, चिंतामणि रत्न समान काम कुंभ समान हैं। अपूर्व धर्ममार्ग औरउसका रहस्य बतलाकर सर्व में बड़ा में बड़ा उपकार आपने हमारे पर किया है। अेसा तत्त्व हमको कहां से मिल सके? ऐसा उपदेश कहीं से नहीं मिल सकता है। हमारे भाग्य के पूरे पूरे उदय से सचमुच आप जैसे परम गुरु का योग हुआ है। आपको जितना धन्यवाद दीया जाय उतना थोड़ा है।

गुरु —हम लोग भी यह उपदेश अपने आत्मा के कल्याण करने के लिये-मानों अपने स्वार्थ के लिये ही देते हैं।

यह पर्युषणा पर्वाधिराज की भी जितनी बन सके उतनी आराधना सम्यक् चारित्र की क्रिया का आचारण करके करनी, उसमें आलस्य नहीं रखना चाहिये।

सर्व — तहत्ति ! तहत्ति !! तहत्ति भगवत !!!



४
मार्गानुसारि विभाग

पाठ १ ला

मार्गानुसारिपने की व्याख्या

गुरु—जो तुमको पारमार्थिक सुख प्राप्त करना हो तो सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र–इन तीनों रत्नों को किस प्रकार से प्राप्त करना? और श्री पर्युषण पर्व जैसे महान् पर्व में उसकी किस प्रकार से विशेष रूप में आराधना करनी? यह मार्ग भी तुमको थोड़े में अच्छी तरह से समझाया है।

पारमार्थिक जीवन यह अपने सबका सबसे उच्च महान् आदर्श है। यही दुःख और मिथ्या सुख से विरक्त होकर मोक्ष मिलने का सच्चा रास्ता है। मोक्ष सच्चा सुख है इस सच्चे सुख मिलने का साधन उपर बताये हुये तीन रत्न हैं। इस लिये ये तीन रत्न मोक्ष के मार्ग और धर्म कहलाते हैं।

मोक्ष का मार्ग रूप तीन रत्न प्राप्त न हो सके, या किंचित् रूप में ये मिल गये हों, तो भी मनुष्य

मात्रको अपना व्यावहारिक जीवन भी मोक्ष मार्ग के अनुसरते ही चलाना चाहिये।

गृहस्थपन में पालन हो सके ऐसा किंचित् त्याग मय बारह व्रतादिक रूपगृहस्थ धर्म पालने वाले और साधुपन में पच महाव्रत रूप सर्व त्यागमय साधु धर्म पालने वाले भी सामान्य रीति से मार्गानुसारी होते हैं।

तीन रत्न रूप मार्ग के अनुसरने वाला व्यवहारिक जीवन को मार्गानुसारी जीवन समझना। भारत के आर्य महा पुरुषों ने पारमार्थिक जीवन जीने के लिये अर्थात् तीन रत्नरूप मार्ग के पालन करने के लिये अनेकों उपाय बतलाये हैं। और व्यवहारिक जीवन भी इसी तरहसे व्यतीत करनाचाहिये कि जिसमें मोक्ष मार्ग में गमन करने में बराबर मदद रूप होसके। मार्ग के नजदीक ले जावे, मार्ग में अड़चन न आने दे, उस का नाम मार्गानुसारीपन गिना जाता है।

पाठ २ रा

आर्य्य संस्कृति

धर्म याने मार्ग, मार्ग याने तीन रत्न, तीन रत्न की आराधना से मोक्ष मिलता है।

तीनों रत्नो की आराधना करते समय जिनको तीनों रत्नों की आराधना करने का संयोग प्राप्त हुआ नहीं है तथापि तीन रत्न की आराधना करने की इच्छा रखते हैं उन सब लोगों के लिये अपनी खुद की जरूरियातें और गृहस्थ धर्म पालने वालों को गृह संसार में उपयुक्त धंधा, लग्न, जाति व्यवस्था, कुटुम्ब-व्यवस्था आदि सब बातें भी मार्ग के अनुसार होनी चाहिये मार्ग का पोषण करने वाला होना चाहिये परंतु मार्ग प्राप्ति में विघ्न डालने वाला मार्ग से विमुख ले जाने वाला नहीं होना चाहिये।

इसीलिये प्राचीन भारतीय आर्य महा पुरुषों ने आर्य संस्कृति की रचना मार्ग के अनुसार की

है। मार्गानुसारी के जो पैंतीस भेद जैन शास्त्रों में बतलाये हैं उनमें प्राय व्यवहारिक जीवन का समावेश होता है। इससे यह सिद्ध होता है की भारतीय आर्य संस्कृति के अनुसार बतलाये हुए सब प्रकार के व्यवहारिक जीवन को लक्ष्य मार्ग धार्मिक जीवन है। प्रजा के जीवन का प्रधान लक्ष्य धर्म मार्ग है। उसकी सिद्धि में मदद करने वाला मार्गानुसारी पन है याने आर्य संस्कृति है।

अर्थात् आर्य्य संस्कृति के अनुसार व्यावहारिक जीवन रखना, उसका नाम भी मार्गानुसारता है। उस प्रमाणे चलने से अपने को दूसरे अनार्य्य इत्यादि प्रजा के साथ व्यवहारिक प्रसंग में अड़चन न पड़े, मार्ग की आराधना करने वालों को भी अड़चन न पड़े। मार्ग की आराधना प्राप्त न हुई हो, उन लोगों को भी व्यवहार में अड़चन न आवे, और सब प्रकार के मनुष्य को क्रमश मार्ग की ओर ले जावे। इस प्रकार की आर्य्य संस्कृति की मार्गानुसारी व्यवस्था है।

आर्य्य संस्कृति का ध्येय मानव जाति को जंगली दशा से छुड़ाकर मानव बना कर

सभ्यतायुक्त और सुसंस्कारी दृढ जीवन व्यतीत कराके मार्ग के नजदीक पहुँचा कर परम सुख के प्राप्त करानेतक है । तीन रत्न रूप महा मार्ग ये आर्य संस्कृति का मुख्य और आदर्श साध्य है । जिसकी इच्छा मार्गानुसारी जीवन व्यतीत करने की हो उनको आर्य संस्कृति का अनुसरण करते हुये जीवन व्यतीत करना चाहिये ।

पाठ ३ रा

संस्कृति के मुख्य २ अंग

किसी भी संस्कृति के मुख्य २ अंग नीचे अनुसार होते हैं —

		मन
धर्म	दैनिक कर्त्तव्य	वचन
राज्य	मासिक कर्त्तव्य	काया
व्यापार	वार्षिक कर्त्तव्य	शिक्षण
धंधा	प्रासंगिक कर्त्तव्य	आत्मा
सामाजिक जीवन	नैमित्तिक कर्त्तव्य	आत्मा का चालु जीवन
कौटुंबिक जीवन	जीव भर के कर्त्तव्य	आत्मा का मर जीवन

जाति जीवन	नैतिक जीवन	पवित्रता
प्रजा जीवन	आध्यात्मिक जीवन	परोपकार
मानव जीवन	हवा	स्वार्थ सिद्धी
घर	भूमि	सरकार
ग्राम	मानपान	युद्ध
शहर	शरीर	सम्बन्ध
देश	आरोग्य	वफादारी
भाषा	वेश	शिस्तका पालन
शास्त्र	भूषा	स्वार्थ का लोभ
लग्न	जन्म	संतान
कला	मरण	साहित्य
	संस्कार	एसत्व

इत्यादि संस्कृति के अनेक अंग होते हैं। उन सब के अपना एकान्तहित करने वाली आर्य संस्कृति की दृष्टि से खूब जानने लायक रस पूर्वक विचार और वर्णन तीसरी पुस्तक में दिया जावेगा।

पाठ ४ था

धर्म का अंग व्यवहार

भारतीय आर्य महा पुरुषों ने आत्मा को परम सुख की प्राप्ती कराने के लिए आध्यात्मिक जीवन

धर्म स्वरूप तीन रत्न जो अच्छा मार्ग बतलाया है उस मार्ग की जीवन में तैय्यारी करने में सहायक हो सके ऐसी राय व्यवहारिक जीवन की पगथाही बतलाई है । और उसको मार्गानुसारी जीवन कहा है।

इससे यह साबित होता है कि आर्य्य संस्कृति का ध्येय धर्म है। और व्यवहारिक जीवन उसका छोटा सा भूमिका रूप अंग है। और होना ही चाहिये।

भारत में लगभग ५० वर्ष से शिक्षण दो तरह से होता है। "धार्मिक" और 'व्यवहारिक' ऐसा असत्य भाषण किसी ने प्रचलित कर दिया है।

भारत वर्ष में धर्म मानव जीवन का प्राण है और लौकिक व्यवहारिक जीवन उसका अंग है।

जीवन का ठीक तौर से बनाने का कार्य शिक्षण का है। वह धर्म और व्यवहार को अंग बनाता है। इसका मतलब यह है कि जो धर्म समस्तजीवन स्वरूप है और व्यवहार उसका अंग है, उसके बदले में धर्म अंग बन जाता है। धर्म अपने स्थान से उत्तर जाता है।

जनता में उपरोक्त अनुसार साक्ष्य का प्रचार होने से आर्य प्रजा में धर्म प्रधान व्यवहार का जो मिश्रण है, वह टूट रहा है जिससे धार्मिक शिक्षण का और आधुनिक व्यवहारिक शिक्षण का प्रचार अधिक होता जाता है। इस तरह का उसमें सुधा गया है।

इस तरह जीवन के विभाग कर देने के बाद, व्यवहारिक शिक्षण भी भारतीय आदर्श के खिलाफ आदर्श के अनुसार दिया जा रहा है और धार्मिक शिक्षण भी भारतीय आदर्श के सिवाय देने का प्रयास किया जा रहा है इससे नैतिक जीवन पर प्रजा के मन को केन्द्रित कर रहे हैं। इससे भारतीय आर्य प्रजा का सब तरह का जीवन गिराने का प्रयत्न कर रहे हैं।

आर्य प्रजा के हित के बहाने से जो शिक्षण को आदर्श का प्रचार किया जा रहा है उस दृष्टि से तीसरे पाठ में बतलाये हुए आर्य संस्कृति के सब अंग तोड़ने के लिए क्या २ योजनाएँ बनाई गई हैं उन सबका वर्णन तीसरी पुस्तक में किया जायगा।

—समाप्त—

महान तपस्वी पूज्य मुनि १००८ श्री धर्मसागरजी महाराज साहेब के सदुपदेश से सस्थापित

श्री जैन श्वेताम्बर संघ की पेढ़ी

प्रिय महानुभावों !

वर्तमान में मालव प्रदेश की धार्मिक-शून्यता जटिल रूप धारण कर चुकी है। इस ओर हमारे पूज्य मुनिराजों का ध्यान आकर्षित हुआ और धर्म के अंग अथवा साधनों को उन्नति देकर उन्हें पूर्ण पुष्ट बनाने वाली एक ऐसी संस्था खोलने का विचार किया जो केवल परमार्थिक दृष्टी से उपरोक्त कार्य करे। तदनुसार हमारे परमुपकारी मुनिदेव श्री धर्म सागरजी महाराज सा० के सदुपदेश से इस संस्था ने जन्म पाया।

मालवा प्रांत में केवल परमार्थिक दृष्टी से कार्य करने वाली यही एक मात्र पेढ़ी है। यह पढी जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार व उनकी योग्य व्यवस्था करती है। सम्यक्-ज्ञान के प्रचारार्थ जगह २ पाठशालाओं का निर्माण कर उन्हें व्यवस्थित ढग से चलाती है। एव साधु साध्वी के वैय्यावच्च में पूर्ण मदद करती है।

जैन बधुओं से नम्र निवेदन है कि सात क्षेत्रों में उचित द्रव्य व्यय करने वाली इस पेढ़ी में अवश्य मदद करें।

नोट—विशष विवरण के लिये पेढ़ी की विस्तृत रिपोर्ट पढ़ें।